कोई अजनबी नहीं

●

शैलेश मटियानी

किताब महल (होलसेल डिवीजन) प्राइवेट लिमिटेड
रजिस्टर्ड आफिस : ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद

१९६६

आदरणीय भाई मन्मथनाथ जी गुप्त को—

१

तेज धूप निकल आने से कँपकंपी छूटनी बद हो गयी, तो राम-प्यारी सोचने लगी कि कही, कोई उसे तबसे यहाँ बस-स्टैंड के पास ही खडा न देख रहा हो, जब से वह उमर हुसेन ताँगे वाले की कोठरी से निकल कर आयी है।

रामप्यारी जब उमर हुसैन ताँगे वाले की कोठरी से बाहर निकल आयी थी, उस समय घना कोहरा छाया हुआ था और ठंडी हवाये आर-पार ऐसे सनसना रही थी कि रामप्यारी अपने को किसी बर्फीली नदी में बहता हुआ-सा महसूस कर रही थी। गुस्से और घबराहट मे वह लोई भी उमर हुसेन ताँगे वाले के यहाँ ही छोड आयी थी और अब सिर्फ धोती और कुरती मे उसे ठंडी हवा अपनी सारी देह मे कँटीले के पत्तो की तरह चुभती हुई लग रही थी। जैसे काँटा या सुई चुभने पर देह में कँपकँपी-सी उठती है और नसो में बहता हुआ खून पीछे को लौटता हुआ-सा महसूस होता है—तीखी ठडी हवाओ के बीच मे फँसे हुए अपने कद्दावर जिस्म को रामप्यारी ने ठीक वैसे ही पीछे को

लौटता हुआ-सा महसूस किया था। उसे याद आया था, जिस समय रेलवे-स्टेशन से यहाँ निजामुद्दीन अपने घर तक लाने के लिए उमर हुसेन ने उसे ताँगे पर बिठाया था, उस समय और भी घना कोहरा छाया हुआ था। हवा उस समय जरूर थमी हुई थी। राम-प्यारी ने देखा था, खुद ताँगे पर चढ़ने से पहले उमर हुसेन ने घोड़ी के पुट्ठे पर जोर से थाप मारी थी। ..और घोडी, अपने सारे जिस्म को कँपकँपाते हुए, कई कदम पीछे तक हटती चली गयी थी।

रामप्यारी को याद आता रहा था, जब उमर हुसेन ने उसकी पीठ पर थाप मारते हुए कहा था कि 'बिगडती क्यो है, बीबी? हथिनी का एक ही दरवाजे के आगे खडा रहना ठीक रहता है। —तब रामप्यारी भी, ठीक वैसे ही, कई कदम पीछे हट आयी थी।

ठड तब भी बहुत थी।

रामप्यारी अब भी यही महसूस करती है कि जिस समय उमर हुसेन ताँगे वाले ने घोडी के पुट्ठे पर थाप मारी थी, उस समय वह ठंड से काँपती हुई पीछे नही हटी होगी। रामप्यारी यह भी महसूस करती रही है कि अपनी पीठ पर उमर हुसेन की हथेली की थाप पड़ने पर भी उसका कद्दावर जिस्म नही हिला था, बल्कि अंदर की कोई ऐसी चीज हिलती चली गयी थी, जिससे उसे अपने सिर्फ औरत जात ही नही, बल्कि रजपूतनी होने का बोध भी बना ही रहता है। जितनी देर तक अदर कँपकँपी उठती रहती है, बाहर की ठंड नही चुभती। रामप्यारी ने कँटीले के पत्तो की तरह पीठ पर चिपक कर, बर्फीली लहर की तरह आर-पार सनसनाती हुई तीखी हवा को तब तक महसूस नही किया था, जब तक उमर हुसेन की कोठरी से काफी दूर नही निकल आयी थी।

रामप्यारी सोचती रही है कि उमर हुसेन ने उसकी नंगी पीठ पर कँटीले का पत्ता चिपका दिया होता, तो वह बर्दाश्त कर सकती

थी । कँटीले के पत्ते की चुभन औरत जात के आत्मबोध के उस हिस्से तक नही पहुँच पाती है, जहाँ तक किसी पुरुष की हथेली का स्पर्श पहुँच जाता है । रामप्यारी ने उन ठंडी हवाओ को बर्दाश्त कर लिया था. जो उसके कद्दावर जिस्म को किसी बर्फीली नदी मे डूबती हुई चट्टान की तरह हिलाती चली जा रही थी ।

अब कोहरा छँट चुका है । धूप लोहे के तसले में से बिखरते हुए चावलो की तरह फैलती चली जा रही है । राम-प्यारी धीरे-धीरे सहमती हुई-सी अपनी छोटी-छोटी आँखें उघाड़ती है । रामप्यारी को लगता है, जैसे कुछ देर पहले कोहरे को चीरती हुई किरणे सिलेटी रंग की चूनर मे काढ़े हुए चाँदी के एकदम महीन-महीन तारो की तरह साफ-साफ दिखाई दे रही थी, अब ठीक वैसे ही खोमचे और स्कूटर वालो की दृष्टियाँ उसके साँवले कद्दावर जिस्म पर फैलती जा रही है । रामप्यारी सामने की कोठियो की तरफ को मुँह फेर लेती है, लोगो की नजरे उसे अपनी पीठ पर सफेद कनखजूरों की तरह रेंगती हुई महसूस होती है । वह जानती है, कि लोगो का उसे यों देखना स्वाभाविक ही है । न-जाने कितनी बसे जा चुकी है दोनो ओर को, मगर रामप्यारी बस-स्टॉप पर ही खड़ी-की-खडी है । न-जाने कितने लोग यहाँ पर एकत्र हुए है और फिर कोहरे की तरह छँट गये है, मगर वह अभी भी यही ऐसी चट्टान की तरह खड़ी है, जिस पर से किसी बर्फीली नदी की बाढ का पानी गुज़र गया हो ।

हो सकता है, बगल के चाय के खोमचे वाले ने स्कूटर वाले सरदार जी से यह बात रामप्यारी को सुनाकर कही हो कि 'सरदार जी दिल्ली शहर की यह सख्त सर्दी तो वही शख़्स बर्दास्त कर सकता है, जिसके पास जिस्म सेकने के लिए बगैर कोयलो वाली सिगडी हो ।'

और, हो सकता है, सरदार जी ने भी सिर्फ खोमचे वाले को सुनाकर ही यह कहा हो कि अरे, यारॉ, बिगैर कोयलो वाली सिगडी तो कोई

नही होती, बादशाहो ! इत्ता फर्क जरूर हौदा सी, यारां, कि किसी मे सिर्फ दो कोयले सुलगते हैं जी, किसी मे दो किलो !'

हो सकता है, खोमचे वाले ने सरदार जी को यह जवाब देते समय रामप्यारी की ओर कोई सकेत न किया हो कि 'सरदार जी, तब तो कोयले नही बल्कि कडे बोलो, कडे ।'

हो सकता है, सिर्फ रामप्यारी ही लोगो की नजरो को अपनी पीठ पर कॅटीले के पत्तो की तरह चिपकता हुआ महसूस कर रही हो, और उसे कोई देख भी न रहा हो । .मगर रामप्यारी अपनी धोती को कुरती पर दोहरा कर लेती है ।

जिन्दगी मे रामप्यारी पहली बार शहर मे पहुँची है और वह भी दिल्ली-जैसे बडे शहर मे । मगर जो-कुछ रामप्यारी महसूस कर रही है, यह सब-कुछ जिन्दगी मे सिर्फ पहली ही बार नही महसूस हो रहा है । उसके कद्दावर जिस्म को कॅटीले के पत्तो-जैसी चुभनवाली नजर से देखने वाले उसके गॉव और कस्बे मे भी कम नही थे । पुरुषो की हथेलियों और ऑखो के स्पर्श से अपने को कई कदम पीछे हटता हुआ महसूस करने की मनस्थिति रामप्यारी के लिए बहुत पुरानी है । ऐसी स्थितियों मे उसने अपने को हमेशा पीछे को सिमटता हुआ-सा अनुभव किया है, जब उसे यह बोध हुआ है कि उसकी कद्दावर देह को आस-पास खड़े मर्द ठीक वैसी ही आँखो से घूरते जा रहे है, जैसे हथिनी को पहली-पहली बार देखने वाले बच्चे अपने कौतूहल को नही सँभाल पाते है और मुट्ठियो मे भर-भर कर धूल-कंकर हथिनी की ओर उछालने लगते है ।

पीठ पर ठंड बर्दाश्त की जा सकती है, लू बर्दाश्त की जा सकती है, पीठ पर कँटीले के पत्ते और रेगते हुए कनखजूरे बर्दाश्त किये जा सकते है । इस हद तक बर्दाश्त किये जा सकते है कि इनकी चुभन से सिर्फ अपनी देह मे ही कँपकँपी, तपिश या बेचैनी अनुभव हो । राम-

प्यारी अनुभव करती है। पीठ पर चुभती हुई मर्दों की हथेलियाँ और आँखें इस सीमा तक नही सही जा सकती है, कि किसी एक ओर को मुँह फेर कर खड़ा रहा जा सके।

रामप्यारी बिल्कुल नही चाहती थी कि स्कूटर वाले सरदार जी की तरफ देखे, मगर उसने देखा। हो सकता है, सरदार जी ने खोमचे वाले की ओर आँखे टिमटिमाई हो। हो सकता है, सरदार जी की मूछें नीद या सर्दी के कारण बड़ी देर तक हिलती रही हो। राम-प्यारी जानती है कि ठड से सुन्न पडी हुई अँगुलियाँ भी एकाएक धूप मिलने पर बडी देर तक हिलती रहती है। रामप्यारी जानती है कि तेज धूप पड़ने पर ओस से भीगा हुआ कँटीले का पत्ता भी बडी देर तक काँपता रहता है।

मगर रामप्यारी फिर भी अपने को यह महसूस करने से नही रोक पाती है कि उसके साँवले और कद्दावर जिस्म को देख कर भी कई तमाशाई मर्दो की आँखे, पलके और मूछे बड़ी देर तक हिलती रहती हैं।

अपने गाँव और कस्बे मे भी रामप्यारी ऐसा अनुभव करने की मनस्थितियो से गुजरती रही है। गाँव और कस्बे मे भी रामप्यारी ने तीखी-बर्फीली हवाये बर्दाश्त की है। रामप्यारी के लिए ऐसा सब-कुछ बर्दाश्त करना अब नया नही रह गया है।...मगर दिल्ली-जैसे बड़े शहर मे भी अपने गाँव और कस्बे की अनुभतियो का ज्यो-का-त्यो बना रह जाना जरूर नया लगता है। मगर शहर नया नही लगता है। गाँव और कस्बो की तरह ही इतने बड़े शहर मे भी पीठ पर कँटीले के पत्तो का ज्यो-का-त्यो बना रहना जरूर नया लगता है, मगर शहर नया नही लगता। रामप्यारी गाँव छोड कर हरिहर सिह अहीर के साथ कस्बे मे सिर्फ इसीलिए गयी थी कि अपने ही मायके के लोगो का अपने को तमाशाइयो की तरह देखना उससे बर्दाश्त नही हो पाया

था। रामप्यारी कस्बे को छोड़ कर मातादीन सिह चौकीदार के साथ दिल्ली शहर को भी सिर्फ इसीलिए चली आयी थी कि शायद दिल्ली जैसा बड़ा शहर शाहपुर-जैसे कस्बे से एकदम नया-नया लगे। शायद, दिल्ली-जैसे बड़े शहर मे वह अपने को अजनबी पा सके और यह महसूस कर सके, कि उसका कद्दावर जिस्म पीठ पर लदे हुए नागफनी के पत्ते और कँटीले के पौधों के बोझ से मुक्त हो गया है। .. मगर अब चूंकि दिल्ली शहर मे आकर भी रामप्यारी बिल्कुल वैसी ही अनुभूतियो से घिरती चली जा रही है—महसूस कर रही है कि जगह बदलने-मात्र से अपने अंदर का वह आत्म-बोध कही भी नही बदल पा रहा है, जो पुरुषो की हथेलियों को नागफनी के पत्तो और दृष्टियो को कँटीले के पौधो की तरह से पीठ पर चिपकता हुआ महसूस करता है—उसको दिल्ली शहर भी शाहपुर कस्बे से नया नही लग पा रहा है।

रामप्यारी एक छोटे-से कस्बे से इतने बड़े शहर मे आकर भी अपने को जरा-सा भी अजनबी महूसस नही कर पा रही है। रामप्यारी महसूस कर रही है कि किसी भी जगह या आदमी का सिर्फ उसके कद्दावर जिस्म के लिए— उसकी छोटी-छोटी आँखो के लिए—अजनबी होना, उसकी मनस्थितियों और अनुभूतियो के लिए अजनबी होना कदापि नही है। रामप्यारी महसूस करती है कि उसके लिए औरो का अजनबी होना तब तक कोई मूल्य नही रखता, जब तक वह खुद दूसरो के लिए अजनबी न हो। .. ...मगर जहाँ भी वह जाती है, कुछ लोगों के बीच मे घिरी होती है—जैसे कि इस समय खोमचेवालो और स्कूटर वालो के बीच मे उसे खडा होना पड रहा है—वहाँ उसे हर नया आदमी भी बखूबी पहचानता होता है।

रामप्यारी महसूस करती है कि उस-जैसी कद्दावर औरत के जिस्म को जिस रूप मे गाँव के लोग देखते थे, ठीक उसी रूप मे, कस्बे के लोगो ने भी देखा था। और, अब इस दिल्ली शहर मे भी वह हरेक

के द्वारा अपने को ठीक उसी तरह देखा जा रहा महसूस कर रही है, तो दोहरी धोती के बावजूद उसे ऐसा लग रहा है कि वह कहीं अपने ही कद्दावर जिस्म के किन्ही हिस्सों को उपलो की तरह सुलगता हुआ महसूस कर रही है। बार-बार साँस चढती हुई-सी लग रही है और उपले और ज्यादा सुलगते हुए-से महसूस हो रहे है। रामप्यारी धोती को छाती के पास तिहरा-चौहरा कर लेना चाहती है, मगर जानती है कि अपने कद्दावर जिस्म को कपडो से ढाँकना अपने को औरो के लिए अजनबी बनाना कदापि नही हो सकता।

और, जब तक व्यक्ति औरो के लिए अजनबी न बन सके, खुद को भी दूसरो के लिए अजनबी बना सकने की कोई गुजाइश नही रहती। रामप्यारी अपनी छोटी-छोटी आँखो की पुतलियो को बरामदे मे टँगी हुई लालटेनो की तरह नीचे की ओर झुकाती है। अपने कद्दावर जिस्म को देखती है। दिल्ली मे आने के बाद से उसने अभी तक अपनी-जितनी कद्दावर औरत कोई नहीं देखी है। इसे यो भी कहा जा सकता है कि शायद, जितने लोगो ने रामप्यारी को देखा है, उनमें से भी बहुतो ने कोई रामप्यारी-जितनी कद्दावर औरत दूसरी न देखी हो! मगर, इसके बावजूद शायद, हर आदमी उसके कद्दावर जिस्म से परिचित है। और रामप्यारी जानती है कि जिन लोगो की आँखो के सामने अपनी देह अजनबी न हो, उनके लिए अपनी आत्मा अजनबी रह जाती है।

रामप्यारी महसूस करती है, कि उसके कद्दावर जिस्म को हर आदमी पहचान सकता है, मगर उसकी भीड़ मे खोई हुई छोटी बच्ची-जैसी उस आत्मा को—उसके औरत जात होने के उस बोध को—कोई नही पहचान पाता है, जो इतने बडे शहर मे एकदम बेसहारा हो जाने पर भी इसलिए, सिर्फ इसीलिए जी-भर कर रो भी नही सकती कि उसे गाँव के बिरखा चौधरी की कही हुई बात हमेशा याद रहती है।

बिरखा चौधरी के पास जब वह कभी बच्ची की तरह रोने-बिलखने लगती थी, तो बिरखा चौधरी तीखी आवाज में कह देते थे—"राम-प्यारी, यो हिया तोड़ के न रोया कर औरों के सामने, बेटी ! तेरा रोना किसी की समझ मे नही आयेगा । कहा जो है सुसरा, कि हथिनी को पेशाब करते हरेक देख लेता है, आँसू बहाते कौन देखता है ?"

न-जाने किस चीज के बारे मे खोमचेवाला सरदार जी से कह रहा है—"साढ़े तीन रुपये किलो के भाव से पूरे सात सौ की बैठेगी, सरदार जी ! दो क्विण्टल तो कही नही गई। बौनी मे बिठा ले जाओ ।"

हँसी के कारण सरदार जी की पगड़ी सिर पर से गर्दन की ओर उतरती जा रही है—'अक्ख-अक्ख अक्ख यारां, की केदा सी तुसी ? मै बोल्या डी० टी० यू० की बस के टायर भी बैठ जावेगे, बादशाहो ! अक्ख-अक्ख-अक्ख .."

रामप्यारी की पीठ पर कँटीले के पौधो की चुभन और छाती मे उपलो की आँच बढती जा रही है । याद आ रहा है, बिरखा चौधरी का कहना, कि 'बेटी, ईश्वर ने तुझे जितना बडा तन दे रखा है ना, बस, इतना ही बडा मन तू बना ले, फिर तुझे किसी की दीठ नही लगेगी ।'

मगर नजर तो व्यापती है । जहाँ कही भी व्यक्ति अपने बाहरी अस्तित्व मे औरो के लिए अजनबी नही हो पाता है, वहाँ उसे औरो की दीठ जरूर व्यापती है ।

नहीं, इतनी बसे छूट गई है, तो और भी छूटती चली जाएँगी । रामप्यारी इस बस में भी नही जा पाएगी । दोपहर होने को आ गयी है । कही कोई जगह अपनी निर्णय-शक्ति के वश मे होती, तो राम-प्यारी अब तक बस मे बैठ कर चली भी गयी होती । लेकिन जहाँ जाती, वहाँ भी इससे और नया क्या होता ।

रामप्यारी फिलहाल किसी जगह पहुँचने की अपेक्षा अजनबी होने

की स्थिति मे पहुँचना चाहती है। कोई सज्जन अपनी पाँच-छ वर्षों की बच्ची की अँगुली पकडे ठीक रामप्यारी के समीप खडे हो गये थे—बस की प्रतीक्षा मे। रामप्यारी ने महसूस किया कि शायद, वे सज्जन भी एक बार उसकी ओर और दूसरी बार अपनी बच्ची की ओर देख रहे है। रामप्यारी अपनी आँखो की पुतलियों को उबलती चाशनी में डाले गये आँवले के दानो की तरह घूमता महसूस कर रही है। रामप्यारी को एक बार अपने को, एक बार उस बच्ची को देखा जाना बुरा नही लग रहा है। रामप्यारी को, शायद, सिर्फ अपना यह महसूस करना बुरा लग रहा है कि उसे देखने और बच्ची को देखने मे फर्क किया जा रहा है।

रामप्यारी ने उस बच्ची को ऐसे देखा, जैसे कोई बच्ची सयानी औरत को देखती है। ..और तब उसे लगा, कि वह खुद भी उस बच्ची को अलग और, उसकी तुलना मे, अपने को बिल्कुल अलग दृष्टि से देखने की कोशिश कर रही है। रामप्यारी की इच्छा हो आयी कि वह थोड़ा-सा हँस ले। हर नयी अनुभूति पर थोडा हँस लेना या रो लेना अपने को अपने ही लिए अजनबी पा लेने का क्षण होता है। रामप्यारी को लगा कि इस बच्ची को वह पहली-पहली बार देख रही है। उसके पिता को भी पहली-पहली बार देख रही है। और बार-बार अपनी बेटी के माथे को चूमता हुआ वह व्यक्ति उसे अजनबी लग रहा है।

रायप्यारी चाहती है कि इस बच्ची को ले जाने वाली बस बडी देर तक नही आये। रामप्यारी ने देख लिया है कि बच्ची की एक चोटी का रिबन खुल गया है, मगर उसके पिता का या तो उधर ध्यान नही है और या वह उसकी माँ के लिए रिबन को खुला छोड़ दिया करता है।.. रामप्यारी अपनी छोटी-छोटी आँखो को थोड़ा-सा और उघाड़ लेती है। वह किसी ऐसे ही—या शायद इसी—खुले हुए

रिबन को ठीक से बाँध देना चाहती है। कस्बे के डॉकटर साहब के यहाँ आया की नौकरी करते हुए रामप्यारी ने ऐसे रिबन बाँधना सीख रखा है कि सहसा देखने वाले को बच्ची के सिर पर रगीन तितली के बैठे हुए होने का बोध हो आये। रामप्यारी रिबन को ऐसे गाँठती है कि वह हवा से हिलते-हिलते उडती हुई-सी लगने लगती है। रामप्यारी ने कई बार अपनी चोटियो मे भी ऐसे ही 'रिबन' बाँधे थे और डॉक्टरनी साहिबा ने अपनी किसी सहेली से कहा था कि 'छि: गँवारू औरतो को और ज्यादा फैशन का शौक होता है। हमारे साहब कहते है कि बडी उम्र मे भी बच्चियो के जैसे रिबन बाँधने वाली औरतें बडी 'लस्टफुल' होती है। जबसे वो नयी आया रखी है ना, तब से हमारे साहब बहुत हँसते है। कहते है कि यह मेरे लिए 'डाइज़ेस्टिग-मशीन' है!' रामप्यारी यह भी नही चाहती थी कि उसे डॉक्टर शर्मा के घर से निकलना पडे। रामप्यारी यह भी नही चाहती थी कि इस बच्ची को . मगर बस आ चुकी है।

रामप्यारी टुकुर-टुकुर देखती रह गयी कि बच्ची को उसके पिता ने गोद मे उठा लिया है और बच्ची का खुला हुआ रिबन पिता की पीठ पर लटक गया है।

रामप्यारी को हरिहर सिंह अहीर शाहपुर कस्बे मे पहुँचा कर, खुद वापस लौट गया था। रामप्यारी को शाहपुर कस्बे से पिछले शनिवार को उसी के मायके का मातादीन दिल्ली शहर मे ले आया था। रामप्यारी को मातादीन चौकीदार शनिवार की आधी रात को ही बडे स्टेशन तक ऐसे पहुँचा गया था कि वह खुद तो, अपने यार-दोस्तो के साथ कोठरी मे रामप्यारी को गालियाँ देता रहा होगा, मगर रामप्यारी उसको ऐसे अपने पीछे-पीछे आता महसूस करती रही थी, जैसे कोई भीड मे खोई हुई बच्ची किसी ओर से अपने पिता को अपनी ओर आता हुआ पाने की आशा मे भीड़ को चीरने की कोशिश

करे। रामप्यारी को आज—सोमवार की सुबह—उमर हुसेन ताँगे वाला अपना नाम उमराव सिह बता कर अपने साथ ले आया था कि उसे किसी साहब के यहाँ आया रखवा देगा।

रामप्यारी, हर ओर से विश्वासघात की चोटो मे आहत होकर, इस बस-स्टॉप की छत के नीचे सुबह से ही खडी है।.. और रामप्यारी जहाँ भी खडी होती है, अपने को भीड मे खोयी हुई बच्ची-जैसा व्याकुल अनुभव करती है। रामप्यारी अपने को अपने ही कद्दावर जिस्म के अन्दर रोता हुआ महसूस करती है। रामप्यारी अब भी ऐसा ही अनुभव कर रही है और चाह रही है कि काश, कोई उसे भी यो ही काँखो में हथेलियाँ डाल कर ऊपर उठा लेता और इस बस-स्टॉप से ही नही, बल्कि इस मनस्थिति से भी कही दूर ले जाकर उसको सबके लिए अजनबी बना देता।

बस को बडी दूर तक देखती रही रामप्यारी। फिर उसे लगा कि उस बच्ची का खुला हुआ रिबन उसकी आँखो मे नीचे लटकता चला जा रहा है।

रामप्यारी ने महसूस किया कि सिर्फ इसी जगह के लिये नहीं, बल्कि, शायद, समूची पृथ्वी के लिए वह सिर्फ एक कद्दावर साँवली औरत मात्र है—एक ऐसी कद्दावर औरत, जिसे कोई पुरुष गोद में या कधे पर नही बैठा सकता। अपने ही कद्दावर जिस्म के अछिद्र पिजरे मे कैद उसकी आत्मा सिर्फ इन खोमचेवालों और स्कूटर वालो के लिए ही नही, बल्कि शायद, संसार-भर के लोगो के लिए अजनबी है। कही, किसी के भी पास उसके अन्दर की औरत जात को पहचानने वाली आँखें नही है।

रामप्यारी को याद आ रहा है कि परसो शाम कोठरी मे पहुँचने के कुछ ही घण्टे बाद जब मातादीन ने रेहड़ी और खोमचेवाले अपने

पाँच दोस्तो को भी उसी छोटी-सी कोठरी मे सोने को कह दिया था, तो वह उठ खडी हुई थी।

रामप्यारी ने नागफनी के पौधे देख रखे है। नागफनी के पत्ते अलग-अलग दिशाओ की ओर तिरछे घूमे हुए होते है। छः-छः मर्दों के बीच उस छोटी-सी कोठरी मे सोते हुए रामप्यारी ने ऐसा ही अनुभव किया था। कोई सिरहाने सोया हुआ है, तो कोई पायताने, और कोई दाहिनी ओर सोया हुआ है, तो कोई बाँई ओर। चतुर्भुज के बीच का केन्द्रबिंदु काफी छोटा होना चाहिये। रामप्यारी ने महसूस किया था कि वह किसी एक ही अष्ठभुज पुरुष के बीच में घिर गयी है, और, मातादीन चौकीदार के मंतव्य का निषेध करती हुई, वह ठीक वैसे ही भिनभिनाई थी, जैसे अष्टपाद मकडे की पकड में फँसी हुई कोई मक्खी भिनभिनाती है।

सुगनचन्द खोमचेवाला ठीक वैसे ही हँसा था, जैसे स्कूल की लड़कियो को दही-भल्ले खिलाते समय हँसता है। वह कहना चाहता था कि 'हरे राम, इतनी कद्दावर औरत और ऐसी इस्कूल की छोकरियो की जैसी महीन आवाज !' मगर बोला था—"मातादीन, अरे यार, इस भागवान से बोल कि इसे घबरा कर उठ खड़ा होने की जरूरत क्या है भला ? घबराना तो हम लोगों को चाहिए था ?"

रामप्यारी कहना चाहती थी, मातादीन से कि उसका जिस्म नही घबराता है, बल्कि उसके अन्दर की औरत जात का जी घिना रहा है कि ऐसे मर्दो और कुत्तो में कोई फर्क भी हो सकता है मगर बोली थी—"क्यो, ठाकुर ! क्या कहके बुला लाये थे तुम हमे दिल्ली शहर ? हमने पहले ही नही बोला था कि हमारे को घरवाली बनाने मे अच्छे-अच्छो की ठकुरैती उतर जाती है ? तुम-जैसे मर्दों की जात तो चोट्टी औरत जात का हिया नही देख सकती ना भड़ैत ? काहे को ले आये थे तुम हमे यहाँ, ये ही कुत्ते लोग के साथ सुलाने को ? त्थू..."

इसके बावजूद मातादीन चौधरी ने उसका हाथ पकड लिया था—"अरी बैठ भी जा ! यहाँ कोई नजदीक मे तेरा मैहर-नैहर थोडे ही है, जो रिसिया के चली जाएगी ? ऐसे तो पाँच पाडवो की दुरोपदी भी उठके ना खड़ी हुई होगी, जैसे तू हो गयी ? तू ही सोच, कि अकेला तो तुझे वह रखेगा, जिसका दुनिया से जी भर गया हो।"

सुगनचन्द फिर हँस पडा था—"अरे, मातादीन ! जरा सँभाल कर ही नीचे बिठाना, यार ! नही तो सीधे सफदरजंग अस्पताल मे भर्ती होना पड़ेगा !" नीचे सोए हुए पाँचो उठ बैठे थे।

रामप्यारी झटके से हाथ छुडा कर, बाहर निकल आयी थी। मातादीन भी बाहर तक आ गया था—"तेरे को हम साफ-साफ बता दे, रामप्यारी ! तेरे को मै लाया ही इसीलिए था, कि सभी लोगों का साथ निभ जाएगा। अब तू जान कि तेरी-जैसी दमदार औरत के लिए तो अकेला मै रोटी भी नही कमा सकता। और दूसरे तू जान, कि दिल्ली शहर मे रहने को कोठी तो मेरी है नही ? साझे की कोठरी है और सर्दी के दिन है। अब तेरे को अपने साथ सुला कर औरो को बाहर कैसे निकाल दूँ भला ? अगल-बगल बैठे हुए है, तो तेरा क्या बिगाड लेता है भला कोई ? शहर मे तो घर-गिरस्ती वाले भी यो ही सोते है।"

"दुत् ! अब ज्यादा मत कुछ बोल। मै कोई कुतिया नहीं हूँ, जो तेरी बात पर दुम हिलाऊँ। कोठरी नही सही, धरती माता मेरे को बहुतेरी मिलेगी देह पसारने को।"—रामप्यारी अँधेरे मे ही बाहर को निकल आयी थी—"दुरोपदी-दुरोपदी कहता है, पापी। अरे, चोट्टे, पाँच पाँडवो और पाँच कुत्तो में बडा फर्क होता है। तूने वही शाहपुर में ही क्यो न बता दिया था हमे अपना कमीन इरादा ?"

मातादीन दाढ किटकिटाने लगा था—"कहाँ चलती ही चली जा रही है बद-दिमाग हथिनी-जैसी ? पुलिस में पकडवा दूँगा, तो यो जान कि दिल्ली के हर एक थाने में तीस-चालीस सिपाही रहते है !"

मातादीन, शायद, यही सोचता था कि रामप्यारी घबरा जाएगी। दिल्ली जैसे शहर मे नयी-नयी आयी हुई, पारिवारिक और सामाजिक तमाम रिश्तो से कटी हुई यह औरत भला अकेली कहाँ जाएगी इस आधी रात में ?

मगर रामप्यारी के लिए दिल्ली शहर भी अजनबी नही रह गया था। रामप्यारी के लिए ऐसी कोई जगह अजनबी नही रह जाती है, जहाँ के लोगो के बीच वह सिर्फ अपने कद्दावर जिस्म को देखा जाता हुआ महसूस करती है। रामप्यारी के लिए अब मातादीन भी अजनबी नही रह गया था।

रामप्यारी ने अँधेरे में ही बाये हाथ से एक तमाचा मातादीन के मुँह पर जड दिया था—"चुप चोट्टे !"

रामप्यारी अँधेरे मे ही बड़ी देर तक गलियारे मे बैठी रही थी और फिर सडक पर चली आयी थी। बड़ी सड़क पर बिजली की रोशनी फैली हुई थी, मगर रामप्यारी जैसे सिर्फ अपने ही अन्दर के उस अँधरे मे चलते हुए बडे स्टेशन तक पहुँच गयी थी, जैसा अँधेरा तब पैदा हो सकता है, जब कोई तुलसीचौरे मे जलते दीपक की लौ पर नागफनी के पत्ते डाल दे। वैसा अन्धकार, जैसा तब जिदगी में घिर आता है, जब सिर्फ रोते चले जाने के अलावा और कुछ भी सूझता ही नहीं है। रामप्यारी इसलिए रोई थी, कि मातादीन उसकी छोटी बच्ची की जैसी आत्मा को नही सँभाल सका और उसके हाथ का तमाचा खा कर वापस लौट गया। और रामप्यारी को ऐसे हरेक पुरुष के प्रति अनास्था और घृणा हो आती है, जो उसे एक कद्दावर औरत की तरह अँधेरी गली मे अपना रास्ता खुद ढूँढने को छोड़ जाए—एक बच्ची की तरह अपने कंधे से लगा कर, साथ न ले जा सके। रामप्यारी बडी देर तक अँधेरी गली में ही बैठी रही थी, कि चोट खाकर मातादीन का मनुष्यत्व जाग गया होगा और वह अपने साथियो को

कोठरी से बाहर निकाल कर, उसे वापस बुलाने आता ही होगा कि 'चल रामप्यारी, आगे से ऐसे गलती नही करूँगा ।'

रामप्यारी को यह सब-कुछ इस समय फिर सिर्फ इसलिए याद आ रहा है, कि उसने एक आदमी को अपनी बच्ची को कंधे से टिका कर ले जाते हुए देखा है और महसूस किया है कि उसे यो कोई नही उठा सकता । उसे यो कोई इस जगह से दूर नही ले जा सकता, जहाँ उसके कद्दावर जिस्म को लोग ठीक वैसे ही देखने लगते है, जैसे शरारती लडके हथिनी को घूरते है और मुट्ठियो से धूल-ककर उछालते है ।

रामप्यारी मूढ नही है । वह यह थोडे ही चाहती है, कि उसे कोई मर्द वास्तव मे कंधे से टिका कर इस जगह से दूर उठा ले जाए । अपने कद्दावर जिस्म के वजन को वह भी खुद बहुत ज्यादा महसूस करती है । . वह तो अपने लिए सिर्फ उस दृष्टि को किसी पुरुष की आँखो मे पाना चाहती रही है, जिससे रामप्यारी से भी कई गुना कद्दावर औरत को उठा कर, अपने साथ ले जाया जा सकता है ।

सरदार जी न-जाने किसकी तरफ देखकर हँस रहे है । कह रहे है—'इस गाड़ी को तो 'स्टार्ट' करने मे ही पूरा एक घंटा लग जायेगा, यारां !' और खोमचेवाला न-जाने किसको सम्बोधित करके नागफनी और कँटीले के पत्ते उछाल रहा है, 'मगर, सरदार जी, जहाँ एक दफा 'इस्टार्ट' कर लोगे, तो फिर घंटे भर तक रुकेगी भी नहीं ।' और पृथ्वी-भर से इस 'बस-स्टॉप' पर जमा हो आए देखने वाले लोग न-जाने किसको देखते चले जा रहे है ।

रामप्यारी महसूस कर रही है, कि उसकी कद्दावर देह के लिये यो ही छोटी पडी रहने वाली धोती—छाती के पास तिहरी कर लेने से—और भी ज्यादा छोटी पडती चली जा रही है ।

●

२

पहले-पहल अपने ही गाँव मे भी कुछ रिश्तेदार तक अजनबी दिखने लगते थे, मगर अब इतने बड़े शहर मे भी कोई इतना अजनबी नही लगता, जिसके आगे अपने वर्त्तमान को झेलते हुए बहुत ज्यादा शर्म महसूस हो।

रामप्यारी महसूस करती है, कि जहाँ अपने बाहरी व्यक्तित्व से हर कोई परिचित दिखाई दे और आतरिक व्यक्तित्व से हर कोई अपरिचित —जहाँ जिस्म और उससे सम्बद्ध तमाम प्रश्नों से हरेक व्यक्ति का लगाव महसूस हो सके, मगर मन और उसकी तमाम तृष्णाओं के लिए हर कोई अजनबी हो—वहाँ अपना वर्त्तमान हमेशा बाहर से उघड़ा हुआ ही रहता है। और, अपने उघड़े हुए वर्त्तमान का आदमी बहुत जल्दी अभ्यस्त हो जाता है।

बस-स्टॉप से सामने वाली सड़क पर चली आने के बाद, रामप्यारी ने फिर मन मजबूत करना शुरू कर दिया। उसने सोच लिया,

आज भी उसके सामने—इस दिल्ली-जैसे बड़े शहर में भी—ठीक उतना ही छोटा या बड़ा वर्तमान है, जितना तब था, जब चौबीस-पच्चीस वर्षों की उम्र तक मायके मे पड़ी हुई थी। इस प्रतीक्षा में, कि हो सकता है, उम्र के साथ मास्टर जी के लड़के का कद भी बड़ा निकल आये। और कद के साथ यह विवेक भी हो आये, कि जो पत्नी के रूप में अपनाई जा चुकी है, वह तो हर स्थिति में अपने से छोटी ही रहेगी। क्योकि पत्नी होने की एक विशेष मनस्थिति होती है और उस मनस्थिति के बोध के कारण ही रामप्यारी तब मास्टर जी के लड़के के सामने से मुँह उघाड कर नही गुजरी थी, जब शादी के चार साल बाद वह गौना कराने आया था और यह कहकर अकेला लौट गया था कि—'ताऊ, मेरी कच्ची हवेली का दरवज्जा इतना बडा नही है ..वो तो मेरे सामने से झुकके भी गुजर जावे, तो भी मुझे यो लगे है कि दो फुट ऊँची उठी हुई जा रही है।'

बिरखा चौधरी ने कहा भी था, कि—'मास्टर, तुम पढ़े-लिखे लड़के हो, तुमको ऐसी नासमझी की बात नही करनी चाहिए। दरअसल इस रामप्यारी छोरी की महतारी जो है ना, सो ठाकुरपुरवा के रामबली पहलवान के घराने से आयी थी। बेटी को माँ का ही कद फूट आया है, तो इसमे भला उस छोरी का क्या दोष? रामप्यारी तो तुम्हारी ब्याहता है, भला। कद की कितनी ही लम्बी-चौड़ी हो, मगर मान-भरम मे तो तुमसे छोटी ही पड़के रहेगी?'

रामप्यारी ने सतपाल सिह, यानी अपने पति, से छोटी पड़कर रहने के लिए ही न-जाने कितना एकांत सिर्फ इसी मे व्यतीत कर दिया था, कि छोटे मास्टर जी घूंघट ऊपर को उठाएँगे, तो उसे क्या कहना होगा? छोटे मास्टर जी उससे बातें करने लगेंगे, तो उसे कितना भरम रखते हुए, 'ज़ी-जी' लगा कर धीमे से बोलना होगा। छोटे मास्टर जी कभी गुस्से मे मार बैठेंगे, तो उसे कैसे चुपचाप सह लेना और रो देना

होगा, ताकि उनको अपने मार सकने की सामर्थ्य का बोध हो सके ? मगर छोटे मास्टर जी अकेले ही खिसक गये थे, और रामप्यारी के सामने सिर्फ एक ऐसा वर्तमान छूट गया था, जिसमें उसके रिश्तेदार तक उसे ऐसी आँखो से देखने लगे थे, जैसी आँखो से बिना महावत की हथिनी को देखा जाता है। जिस सुबह ससुराल की दिशा की ओर जाने का सपना रामप्यारी ने रात-भर देखा था, उसी सुबह रामप्यारी को चुपचाप अरहर के खेत मे खिसक आना पडा था। अरहर के पौधों के बीच से अपनी छोटी-छोटी आँखो को रामप्यारी ठीक वैसे ही हिलाती रही थी, जैसे मुर्गी अपने काने पड़े हुए अंडो को हिलाती है।

छोटे मास्टर ठाकुर सतपाल सिह जी रामप्यारी की ससुराल को जाने वाले रास्ते पर बढ़े चले जा रहे थे।...रामप्यारी देखती रही थी . . और रामप्यारी महसूस करती रही थी कि इस बार उसका धर्म का भरतार उससे भी छोटे कद का होकर वापस जा रहा है, जितना बडा वह तब से वर्षो पहले शादी के दिन आया था। रामप्यारी ने महसूस किया था कि अपने से देह और मन दोनों मे छोटा पडा हुआ पुरुष जिस औरत को भी मिलता होगा, उसी की आत्मा अपनी आँखो को ठीक वैसे ही फोड़ लेने को हो आती होंगी, जैसे रामप्यारी का हो आया है। ठीक वैसे ही, जैसे मुर्गी अपने काने अडो को फोड डालती है।

अपने जीवन के प्रथम पुरुष को देह और आत्मा दोनो से क्षुद्र पडता हुआ देखते चले जाने को बाध्य आँखें, वास्तव मे, इतनी कानी हो आती है, कि उनसे फिर कोई और विराट सपना, कोई और बेहतर भविष्य कभी भी नही दिखाई दे पाता है।

सुखी भविष्य को देख पाने की सामर्थ्य रामप्यारी ने तभी खो दी थी। संकटापन्न वर्त्तमान को झेलने की शक्ति रामप्यारी ने तभी पा ली थी। शायद, मायके की धरती को पहली-पहली बार छोड़ते हुए भी,

रामप्यारी जानती थी कि किसी स्थान-विशेष को छोड़ना मात्र ही अपने वर्तमान को छोड़ पाना कदापि नहीं होता है।

गाँव के ही, अपने से छोटी जात के, हरिहर सिंह अहीर के साथ आखिर पूरे पच्चीस वर्ष की उम्र में रामप्यारी शाहपुर कस्बे की ओर, इसी मिथ्याशा में निकल गयी थी कि शायद, बाहर चले जाने पर मायके में बना हुआ वर्त्तमान अतीत में बदल जाए। मगर जब हरिहर अहीर ने भी उसे लाला छिद्दाराम हलवाई की हवेली तक पहुँचा कर विदा ले ली, तो रामप्यारी ने पाया कि सिर्फ जगह बदल गयी है, वर्तमान नहीं बदला है। स्थिति बदल गयी है, मगर मनस्थिति बदलने की गुंजाइश नहीं है।

लगातार छः वर्ष शाहपुर कस्बे में बिता कर भी रामप्यारी का वर्तमान ज्यों-का-त्यों वही बना रहा था। दिल्ली शहर में आ जाने के तीसरे दिन भी उसमें कोई परिवर्त्तन नहीं हो पाया है। यानी राम-प्यारी पिछले चौदह-पन्द्रह वर्षों से जैसे वर्तमान की अभ्यस्त होती चली आयी है, फिर ठीक वैसा ही वर्त्तमान अब भी सामने है। आजी-विका का प्रश्न भी ज्यों-का-त्यों सामने है और इतने बड़े शहर में एक अकेली औरत जात होने का बोध भी।

रामप्यारी के सामने अब कोई भविष्य ऐसा नहीं है, जो उसे दिखता हो।.........और सिर्फ इसीलिए रामप्यारी इस वर्त्तमान को भी जीने का इरादा करती चली जा रही है, क्योंकि वह महसूस करती है, कि अपने इसी वर्त्तमान में मरने से उसकी मुक्ति कदापि नहीं हो सकेगी। रामप्यारी अपनी जिन्दगी के आखिरी क्षणों में एक ऐसे भविष्य में मरना चाहती है, जहाँ उसके कद्दावर जिस्म के अन्दर की औरत जात को पहचान सकने वाली दो आँखें जरूर हों।

रामप्यारी अपने कद्दावर जिस्म की व्यर्थता के बोध से मुक्त होकर मरना चाहती है। रामप्यारी, सम्भवतः, जानती है कि बिना

अपने अस्तित्व की सार्थकता या निरर्थकता के बोध के ही कोई भी वर्त्तमान भविष्य नही बन सकता है।

बस-स्टॉप के पास से हट कर आते हुए रामप्यारी यही सोचती रही, कि न तो लौटने का प्रश्न है, न लौटने की कोई उपयोगिता है। मायके में तो इतने वर्षो के बाद जाने का अर्थ ही छिनाल कहलाना है। शाहपुर के कस्बे को लौटना भी बेकार है। मजदूरी-नौकरी करके ही वहाँ भी पेट पालना है।

रामप्यारी के लिए मजदूरी-नौकरी भी अजनबी नही है।

सडक के मोड़ पर पहुँचते ही, रामप्यारी सडक पार करती मजदूर औरतो को देखकर, रुक गयी। सड़क के किनारे लगे हुए ईंटो के ढेरो मे से औरतें ईंटे ढो रही थी। एकदम सामने, थोडी-सी ही दूरी पर, नयी कोठी बन रही थी। जहाँ सडक पर ईंटो के ढेर लगे हुए थे, एक गोरी-चिट्टी वृद्ध महिला धीरे-धीरे इधर-उधर टहल रही थी। उनकी दृष्टि ईंटो को ढोती मजदूरिनो के सिरों पर से होती हुई नयी बन रही कोठी तक पहुँचती थी और कोठी की चिनाई वगैरह मे लगे मजदूरो और उनके काम को देख रही अपनी बहू, मिसेज कपूर, के आदेश देने की मुद्रा मे हिलते हुए हाथो से टकरा कर, लौट आती थी। दूर से भी बड़ी-बड़ी दिखती मिसेज कपूर की हथेलियाँ—नागफनी के पत्तो की तरह अगल-अलग दिशाओ को पलटती हुई हथेलियाँ—रामप्यारी को लगा कि दिल्ली आने के बाद उसने पहली बार उतनी कद्दावर औरत को देखा है, जितना वह खुद को समझती है।

वृद्ध महिला, टहलती-टहलती रामप्यारी के एकदम समीप पहुँच कर, वापस लौट गई थी। रामप्यारी ने एक झलक उनके चेहरे को देखा था। सँकरे ललाट पर फैले हुए श्वेत केश जैसे बता रहे थे कि इस सौभाग्यवती का भाग्य चाँदी के अक्षरो से लिखा गया है।

रामप्यारी अनुमान लगाती रही कि शायद, सामने वाली कोठी इसी वृद्धा के बेटे की तैयार हो रही है। रामप्यारी वृद्धा के लौटने की प्रतीक्षा करने लगी।

लौटी, तो पूछ ही लिया—"माँ जी, वो सामने वाली कोठी आपके ही बाबू जी की बन रही है क्या ?"

रामप्यारी ने दोनो हाथ जोड रखे थे। वृद्धा ने किंचित चौंक कर उसे देखा। फिर हँस कर बोली—"जीती रहे। ..वो सामने वाली कोठी ना ? हूँ-हूँ-हूँ नही, रे ! मेरे बाबू की नही, मेरे बेटे की बन रही है। कौन है तू ?"

"बाबू जी से मेरा मतलब आपके लला जी से ही था, माँ जी ! अभागिनी औरत हूँ। कही मजदूरी ढूँढती फिरती हूँ। आपके कुँवर जी लाख बरस जिएँ, माँ जी ! ईंट, गारा ढोने का काम मुझे नही मिल सकेगा आपकी कोठी मे ? तकदीर की मारी हुई हूँ . ..।"

"सो तो तू अपने हुलिये से ही दिखाई देती है, भागवान ! जितना बडा जिसम पाया है, उतनी बड़ी धोती भी नही मिली तुझे।" वृद्धा ने बीच मे ही बात काट दी। फिर पूछा—"कहाँ रहती है, बच्चे कितने है ?" रामप्यारी ऐसे प्रश्न की प्रतीक्षा मे नही थी, सो सोचते-सोचते कई क्षण बीत गये। वृद्धा के प्रश्न करते ही, रामप्यारी सच बात कहने कहने को हो गयी थी। तभी यह आशका उठी मन में, कि कहीं निठल्ली को काम देने से इन्कार न कर दे ? सँभल-सँभल कर बोली —"माँ जी, उमरावसिह ताँगे वाले की बीबी हूँ। यही उधर एक कोठरी मे रहती हूँ ।..बच्चे तो तीन-चार है माँ जी !' अपना वाक्य पूरा करते-करते रामप्यारी को अनायास ही याद आ गया, कि उसने उमर हुसेन ताँगे वाले के घर पर उसके तीन-चार ही बच्चे देखे थे। साथ ही उसे एकाएक अपने प्रति थोड़ी-सी घिन भी हो आयी, कि आज उसने जिंदगी मे पहली बार किसी को अपना पति बतलाने में झूठ बोला

है।...और, वह भी ऐसे आदमी को, जो उसे विश्वासघात करके ले आया था और रजपूतानी से मुसलमानी बनाना चाहता था।

तभी वृद्धा ने पूछ लिया—"तो क्यो, तेरा मालिक नही कमा लेता गुजर-भर को क्या ? यहाँ दिल्ली मे तो ताँगे वाले, सुना है, बड़ा पैसा पैदा कर लेते है ?"

रामप्यारी को जैसे अपने प्रति हो आयी घृणा को व्यक्त करने का अवसर मिल गया। बोली—"उस अभागे को गुजरे हुए तो कई बरस हो गए, माँ जी !"

इस बार रामप्यारी अन्दर-ही-अन्दर हँस पड़ने को हो आयी। बाहर से और ज्यादा दुखी दिखने का प्रयत्न करती रही, मगर तभी वृद्धा की तेज आवाज ने उसे चौका दिया"—काँच की चूड़ियाँ तो तूने अभी तक नही तोड़ी है ? विधवा जैसी तो लगती ही नही तू आँखो से ?'

रामप्यारी ने महसूस किया, झूठ पकड़ लिए जाने से उसका चेहरा ठीक वैसा ही पडता जा रहा है, जैसा एक बार पहले डाक्टर शर्मा का जूठा हलुवा चोर कर खाते हुए मे पकड़े जाने पर पडा था। जब डॉक्टरनी ने डाँटते हुए कहा था—'अरे, तू चुरडी तो अपने को डॉक्टर साहब का जूठा खाने का हकदार भी समझने लग गयी है ?'

रामप्यारी को याद है, उसी दिन रामप्यारी डॉक्टर शर्मा की नौकरी छोड़ आयी थी। रामप्यारी ने महसूस किया, कि उसके झूठ से स्याह पडते हुए चेहरे के साथ ही मजदूरी मिलने की सभावना भी टूट गयी है। पहले तो एक बार उसका मन झूठ से ही झूठ को ढाँकने को हो 'आया' कि कह दे—'दूसरा खसम कर लिया है, उसी के सुहाग की चूड़ियाँ है। ..'मगर इस कल्पना-मात्र से अपने प्रति बहुत ज्यादा घृणा हो आयी। जब एक के बाद एक, कई पुरुषो की ब्याहता होने की बात

मुँह से स्वीकारी जा सकती है, तो फिर मातादीन सिंह की कोठरी में कई पुरुषो के बीच सोने मे ही क्या पाप था ?

रामप्यारी की छोटी-छोटी आँखे अपनी असमर्थता के बोध से भर आयी। रो पड़े, इससे पहले ही वह वापस मुड़ गयी। धीरे-धीरे कुछ कदम आगे बढकर, वह तेजी से दूसरी ओर चली जाना चाहती थी, कि वृद्धा की आवाज ने उसे रोक लिया--'अरी ओ, रुक भी जा। जरा बात तो सुन...'

रामप्यारी ने ठीक ही महसूस किया था कि वृद्धा ने सिर्फ आवाज ही नही दी है, बल्कि कुछ कदम उसकी ओर आगे को भी बढ आयी है। रामप्यारी पलटी, तो अपने को ठीक वृद्धा की आँखो के सामने खडा पाया। वृद्धा की अनुभवी आँखो ने जैसे एक ही झलक में रामप्यारी की आँखो मे उमड कर, वही थम गये आँसुओ को देख लिया। बोली--"दूसरा कर लिया है, तो इसमे शरमाने की क्या बात है ? तुम मजदूर लागो मे तो ऐसा चलता ही रहता है। मैने तो तेरे से यो ही पूछ लिया था। तू जान कि मेरी उमर चौहत्तर बरस की हो गयी है। नजर भी कुछ कमज़ोर पड़ गयी है। मुझको तो तेरी आँखे कुँवारियों-सरीखी दिखाई देती थी। खैर, अपनी-अपनी आँख का पानी है। किसी का मर जाता है, किसी का नही मरता।...तेरे को मजदूरी करनी है ? आ मेरे साथ आ। कुल्लू को बोलती हूँ। ए-ए फूल-अ-अ ? उत्थे कुलवंत हैगा ? जरा इत्थो भेज दे।'

बहू को आवाज देकर, वृद्धा उस कोठी के लॉन की ओर चल पडी, जिसके आगे ईटों के ढेर लगे हुए थे। चलते-चलते, बोली--"इधर किराये मे रहते है हम लोग। उधर खुद की कोठी बना रहे हैं। तेरा नाम क्या है ?"

"रामप्यारी, माँ जी !"

"राम खैर करे।" वृद्धा फिर हँस पड़ी--"मगर अपने भारी-भरकम

जिस्म के होते भी लगती तो तू कुछ प्यारी ही है ! तेरे को देख के तो वही कहावत याद आती है, कि 'हत्थी केरा तन दिया, चिड़िया केरे नैण ।'...इतना बड़ा जिसम, इतनी छोटी आँखे और इतनी बारीक अवाज !...बैठती हो, तो बैठ जा ।'

रामप्यारी खड़ी ही रही ।

कपूर साहब श्रीमती कपूर के साथ आ रहे थे । वृद्धा बोली—'मेरे बेटे-बहू है । कोठी के मालिक ये ही दोनों है ।'

रामप्यारी ने दूर से ही हाथ जोड़े रखे ।

समीप पहुँचते-पहुँचते, श्रीमती कपूर ने नागफनी का पत्ता रामप्यारी की ओर घुमाया—'ये कौन है, मॉज्जी ?'

रामप्यारी ने सुना, श्रीमती कपूर की आवाज उसकी-सी महीन नही है, पुरुषो का-सा भारीपन है उनकी आवाज मे ।

माँ के बताने पर, कपूर साहब हँस पड़े—'फूला को ऐतराज न होवे, तो रख लो । सानूं की फर्क पेंदासी ?'

हँसने को तो श्रीमती कपूर भी हँस पड़ी, मगर उनके बोलने से रामप्यारी को यह अहसास हो आया, कि रामप्यारी के कद्दावर जिस्म को अपने प्रति किए जा रहे परिहास का माध्यम समझ कर, श्रीमती कपूर कुछ रुष्ट हो आई है । श्रीमती कपूर ने अपनी हथेली फिर पलटा दी थी—"मजदूरी होवेगी भी इससे ?"

"अरे, नही भी होवेगी, डियर, तो की फर्क पैदासी ? तुम्हारा अकेलापन तो दूर हो जाएगा, कि नही ?"—कपूर साहब फिर हँस पड़े । साथ ही, उनकी माँ भी हँस पड़ी । इस बार श्रीमती कपूर भी हँस पड़ी । हो सकता है सप्रयास हँसी हो, मगर कपूर साहब के कंधे पर उन्होने हाथ मार ही दिया—"तुसी तो बहुत 'नौट्टी' हो ज्जी !"

"क्यों, कुल्लू ? फूल तेरे को 'नाट्टा' बतलाती है क्या ? अरी, भाग-

वान, मर्द का तो कद नहीं कलेजा देखा जाता है। और वो भी चार बच्चे हो जाने के बाद नहीं, बल्कि शादी से पहले।"

बडी देर तक तीनों को खुल कर हँसते देखकर, रामप्यारी ने अनुमान लगाया, इनका पूरा परिवार इतने ही उन्मुक्त व्यवहार और विचार वाला होगा।

हँसी थमी, तो वृद्धा ने ही पूछा—"कब से आना चाहती है मजूरी पर ?"

"जब से हुक्म होगा, माँ जी !"—रामप्यारी ने हाथ जोड़े ही रक्खे—"आज से ही रख लो, बाबू जी, तो बड़ी मेहरबानी होगी।"

कपूर साहब फिर हँस पड़े।

इस बार श्रीमती कपूर को मौका मिला। पति के कानों में फुस-फुसाती बोली—'ज्जी, तुमसे ही कह रही है, रक्ख लो !'

कपूर साहब जोर से ही बोले—"अजी बस ! एक दरवाजे पर एक ही हाथी काफी होता है। ..अच्छा, तेरा नाम क्या है ? तू चली जा। जी चाहे ईट ढोले, जी चाहे गारा...अच्छा, तुसी जरा इस मजूरिन को—क्या नाम है तेरा ? सरदार जी, तुसी जरा रामप्यारी को ले लो।"

सरदार खुशवंत सिह बढई के पास से यह कहते हुए उठ आए—"ले सुणले, तीरथराम ! मै न कहता था तेरे से कि कपूर साहब हमारे मालक ने सिरफ मेरा नाँव ही बदल के खुशत से खुशाल नहीं कर रखा है, बल्के हमेशा खुशाल ही रखते भी है। कोई जनानी मजूरिन दिख रही है। होर मालक साहब कहते है, जरा इसकी भी ले लो। अक्ख-अक्ख-अक्ख ..'

आगे बढ आयी रामप्यारी को सिर्फ सरदार जी की हँसी ही सुनाई देती है। रामप्यारी दूर से ही महसूस करती है कि शायद, कोई स्कूटर मे बैठा-बैठा ठहाके लगा रहा है। रामप्यारी को याद

आता है कि जिस समय कपूर साहब ने हाथी वाली बात कही थी, उसे 'हथिनी' सुनाई पडा था। और उस क्षण उसने फिर महसूस किया था, कि वह कही भी जाए, औरो के लिए मनोरंजन का साधन बन जाने की अनिवार्यता से वह अपने को मुक्त कर नही सकती।

रामप्यारी सुन नही पायी।

उसके सडक के किनारे से ईंटे उठाकर, बढई और राजगीरो के पास पहुँचने-पहुँचने तक, तीरथराम बढई सरदार खुशवंत सिह से कह चुका था––"जरा सँभल के ही रहना, सरदार जी ! कही आने वाली आपको ही नही ले बैठे ?"

रामप्यारी को सिर्फ हँसी सुनाई देती रही। उसे लगा कि वह, शायद, सरदार जी और मजदूर मर्द-औरतो को सम्मिलित रूप से हँसता हुआ महसूस कर रही है। रामप्यारी तेजी से दुबारा ईटे ले जाने को लौट आयी।

●

३

श्रम करने की तो रामप्यारी अभ्यस्त थी, मगर या तो उसने खेती के काम किये थे और या घरेलू नौकरियाँ की थी। ईंट ढोने का यह पहला-पहला अवसर था। मजदूर मर्द-औरतो की सामूहिकता मे अपने को खपाने की आवश्यकता रामप्यारी ने जल्दी ही अनुभव कर ली। एक प्रौढा मजदूर औरत से उसने बाते करली, ताकि काम के सिलसिले में उसे सरदार खुशवंत सिंह से कुछ न पूछना पडे। सरदार खुशवतसिंह से कुछ न बोलते हुए भी रामप्यारी न-जाने क्यों ऐसा महसूस कर रही थी कि उमेठी हुई मूंछो वाले पुरुषों को वह जब भी हँसता हुआ देखती है, उसे वितृष्णा हो आती है। उसे लगता है, उसे लक्ष्य करके जब भी कोई पुरुष हँसता और मूंछे उमेठता है, तो वह महसूस करने लगती है, कोई झाडू की सीको से उसकी ओर कीचड उछाल रहा है।

रत्तो ताई से रामप्यारी ने पटरी माँग ली थी, ताकि ईंटें ज्यादा और सुविधापूर्वक ले जाई जा सकें। शुरू में, तीन-चार बार बिना पटरी

के ही ईंटे ढोती रही थी, मगर फिर वह सतर्क हो आयी थी। किसी ने उससे कुछ नही कहा था, मगर वह खुद सोचती चली गयी थी, कि उसे इतनी कम ईटें ढोते देखकर, मजदूर मर्द-औरतो मे काना-फूसी होने लग गयी होगी कि 'दिखती तो हथिनी के बराबर है, मगर बोझ गधी के बरोबर भी नही उठता।'

हो सकता है, सरदार जी ऐसे हँस पडें कि उसे ये ही शब्द कहे जाते सुनाई दे ? हो सकता है सामने लॉन मे बैठे हुए कपूर साहब, उनकी माँ और श्रीमती कपूर भी गौर से देख रहे हो कि कितनी ईटें ले जा रही है रामप्यारी ?

रामप्यारी ने इस बार पटरी पर सोलह ईंटें रखी। और मजदूरिनें दस ईंटें उठा रही थी। रत्तो ताई ने हाथ लगाने से इन्कार कर दिया, कि 'मै तो तेरी-सी जवान ना हूँ, री ! मेरे मे तो न उठेंगे। बिंदो, तू उठवा दे के. . ."

बिंदो ने धोती का पल्ला सपाटे से पीछे को फेंका और ईंट उठवा दिये। मगर रामप्यारी आगे बढ़ी ही थी, कि बिंदो का व्यंग सुनाई पड गया—"मने तो औरत बडी सयानी दिक्खे है, ताई ! मालिक लोगो को अपनी बफादारी दिखानी चाहै बम्मू !"

"अरी, नवेली बहू बासन ज्यादा ही घिस्से है। मने तो समझदार ना दिखती मोट्टी, शरमदार जरूर दिक्खे है।" रत्तो ताई बीड़ी का सुट्टा भरते हुए बोली।

बिंदा इस बार जरा फुसफुसा कर—मगर ऐसे, जैसे किसी चीज को रेत रही हो—बोली—"वो क्या शरम ढक्केगी, ताई ! और भला, ढांकनी भी चावै, तो तब ढँके, जब सँभलते हों।"

रत्तो ताई बड़ी देर तक ऐसे हँसती रही कि बीड़ी का धुवाँ उसकी नाक से पानी के छीटो के साथ निकलता रहा। बिदो ने अपना मुँह पोंछ लिया—"ताई, तेरे को सर्दी लग गयी दिखती है ? यों खीस काढके

मत हँसा करे, ताऊ देख लेगा, तो फिर तग करेगा।" रत्तो ताई और जोर से हँस पड़ी—"अरी, मै कोई तेरी-सी जवान ना हूँ अब।"

सामने से सरदार खुशवंतसिह ने हाँक लगाई—"अरे, तुम लोग हँसी का ही रोला पावोगे कि कुछ काम-धाम भी करोगे ? क्यो, भई तीरथराम, ये तेरी लकडी तिरछी किधर को जा रही है ? तेरा धियान भी कुछ मदा ही दिखता है मेरे को। बादशाओ, खिड़की तिरछी हो जावेगी, तो मालकन साहबा को पूरा दिल्ली शैर ही तिरछा दिखाई देगा।"

"मगर मेरे को तो मिसेज कपूर की नजर एकदम सीधी दिखाई देती है, सरदार जी ! जबतक यहाँ खड़ी रहती है, लगता है कि उनकी नजर साढ़े तीन इची कील की तरह मेरी पीठ पर ठुकी हुई है। सिगरेट की दम लगाने की भी फुर्सत नही मिलती।"

तीरथराम ने सिगरेट निकाल ली। सरदार खुशवंतसिह, हट करके, दूसरे मजदूरो की तरफ चले गये।

तीरथराम सिगरेट का धुआँ उसी ओर फेंकते हुए चिल्लाया—"सरदार जी, तुसी जरा ईंटे उतरवा दो। मगर वजनदार ईंटो को सँभाल कर पकड़ना।" सरदार जी इस बार हँस पड़ने की जगह कुछ खिसिया-से गये। उन्हे तीरथराम का यह अनुमान लगाना कभी भी अच्छा नही लगा, कि वो मजदूरिनो की ईंटे किसी विशेष कारण से उतरवाते हैं। उनका मन तीरथराम से कहने को होता है कि ईंटे उतारने में अगर कोई औरत उनके हाथो की तरफ को ज्यादा झुक पड़ती है, तो इसका मतलब यह तो नही होता कि सरदार जी खुद शरारत करते है। सरदार जी सिर्फ इतना ही कहते है—"हुण तो मैं पाणी पीने जावँगा, तीरथराम !"

सरदार जी मजदूरो के 'मेट' जमादार होते हुए भी तीरथराम से दबंग होकर नही बोल पाते है। उन्हें लगता है कि इन सारे मजदूरों

के बीच मे हरभजन और तीरथराम ही दो ऐसे आदमी है, जिनकी पैनी आँखें अपनी-अपनी घरवालियो---बिंदो और किरती पर ही नही, बल्कि औरो पर भी लगी रहती है। सरदार जी को इस बात से कोई आत्म-ग्लानि महसूस नही होती है, कि ईंटें उतारते मे किसी मजूरिन की छाती से उनके हाथ छू जाते है। दिन-भर तमाम फूहड़ मजदूर औरत-मर्दों के गीच मन बार-बार ऊबता रहता है। थोड़ी-सी हँसी-मजाक कर लेने से ऐसा लगता है कि सिर्फ रोटी ही नही कमा रहे है, बल्कि जिदगी भी जी रहे है। मगर तीरथराम उन्हे थोड़ा-सा काइयाँ लगता है, जबकि हरभजन खूँख्वार। करने को दोनो मजाक भी करते रहते है, मगर तीरथराम की आँखो और उसकी घुमा-फिर कर कही गयी बातो से सरदार जी को लगता है कि तीरथराम कही हरभजन से कह ना बैठे। कल हरभजन की घरवाली बिदो ने तीरथराम के सामने ही अपनी ईंटे जोर से जमीन पर पटक दी थी और कह दिया था कि 'सरदार जी, आप मेरी ईंटे मत उतारा करो।'

तब से सरदार जी ने दूसरों की ईंटें उतरवानी भी छोड दी है, मगर तीरथराम की तानाकशी नहीं छूटती है। जब कभी मजदूर औरतों की तरफ जाते देखता है सरदार जी को, कुछ-न-कुछ फिकरा कस देता है। सरदार जी हरभजन या किसी और मजदूर से नहीं डरते, सिर्फ अपनी इज्जत से डरते है। हरभजन को वो आज से नही, बहुत पहले से जानते है। उन्हें याद है कि बरसो पहले उसने जब एक नयी मजदूरनी रख ली थी और ओवरसियर साहब ने उसे छेड दिया था, तो हरभजन ने 'मजदूरों की माँ-बहनो की इज्जत पर डाका।' लिखा हुआ लाल झंडा उठाकर, एक तूफान-सा खड़ा कर दिया था।

हरभजन की सरदार जी से कभी कोई अप्रिय बात-चीत नही हुई है, मगर सरदार जी उसके स्वभाव से परिचित हैं। उन्हे लगता है कि हरभजन के खून मे कुछ ऐसे कीड़े जरूर है, जैसे मेढ़े के सीगो मे

होते है । लडने-झगडने का कोई भी अवसर वह अपने हाथो से छूटने नही देना चाहता, चाहे मजदूरी का सवाल हो या झुग्गियाँ डालने का। जहाँ भी खाली जमीन मिली, अपनी बिरादरी की पचासो झुग्गियाँ सिर्फ एक दिन मे डलवा देना और जब तक नगरपालिका के 'झुग्गी-उखाड' दल के लोग न पहुँचे, तब तक किसी भी स्थिति मे झुग्गियाँ न हटाना और हमेशा दो-दो तीन-तीन औरते रखना—जैसे उसका आत्म-संस्कार बन चुका है । हो सकता है, बिरादरी के लोगो मे इसी-लिए हरभजन का और भी ज्यादा प्रभुत्व हो ।

तीरथराम और हरभजन की उपस्थिति मे मजदूरिनो से बोलने, उनकी ईंटे उतरवाने और सतर्क आँखो से उन्हे दो-मजिले-तिमंजिले पर चढते हुए देखने मे सरदार खुशवंत सिंह को हमेशा असुविधा अनु-भव होती है । यो तो अधिकाश मजदूरिने ऐसी होती है, कि उनमे और मर्दों मे खास फर्क रह ही नही जाता है । एक-दो बच्चे हुए नही, कि उन पर बुढ़ापा छाने लग जाता है और वो अपनी देह की तरफ से निश्चिंत हो जाती है । गर्मी के दिनो मे मजदूरिने सिर्फ एक धोती पहनती है और उन दिनो सरदार जी को मजदूर औरतो और पपीते के ऐसे मुरझाये हुए पेडो में कोई अंतर नही अनुभव होता, जिनको असमय ही पाला मार गया हो । और जो औरते अपनी देह के प्रति खुद ही लापरवाह हो चुकी हो, उन्हे सतर्क आँखो से देखने की कोई इच्छा शायद, किसी भी पुरुष मे शेष नही रहा करती है । सरदार जी ने तो हमेशा यही महसूस किया है कि औरतो में सौदर्य ढूँढने का प्रयत्न करना खुद अपने ही अंदर जिदगी को ढूँढने की प्रक्रिया से गुज-रने की स्थिति हुआ करती है । सरदार जी अब प्रौढ़ हो चुके है और अनुभव करते है, कि औरतों के प्रति अपनी आँखो के सौदर्य-बोध के मर जाने का अर्थ ही बुढ़ापे को अपनी आत्म-स्वीकृति दे देना है । सरदार जी अपनी पत्नी सतवंत को अब भी ठीक वैसी ही आँखो से

देखने की शोशिश करते है, जैसे शादी के दिनो मे देखा करते थे और सरदारनी जी जब टोकती है, तो सरदार जी हँस देते है । . और उनकी हँसी से ही सरदारनी अनुमान लगा लेती है, कि सरदार जी यही कहना चाहते है कि 'मेरा तो नाम ही खुशवंत है और मै तो हर हालत मे खुशहाल रहना चाहता हूँ । और आदमी सिर्फ वही खुशहाल रह सकता है, जिसकी आँखो मे जिंदगी की खूबसूरती की तलाश करने वाली मशाल बुझ न चुकी हो ।' लगातार पिछले चौदह वर्षो से सरदार जी मजदूरो के बीच मे रहते आ रहे है और कभी भी ऐसा नही हुआ कि उन्होने किसी मजदूर औरत से वासना-तुष्टि की कोई चेष्टा की हो । ऐसे अवसर भी आये है, जब कई मजदूर औरतो ने खुद उनसे सम्बन्ध साधने की कोशिश की है, मगर सरदार जी ने सरदारनी के नाम को याद किया है और अपने 'सत्त' की रक्षा की है । इसके बावजूद, दिन-भर—कभी-कभी रात-भर भी—मजदूरो के काम की निगरानी और उनका हिसाब-किताब रखने की उकता देने वाली जिन्दगी के बीच इन्होने उस जिंदगी की तलाश जरूर की है, जो मनुष्य के अन्दर के उस सौदर्य-बोध को जगाती है, जिसके लिए वह अपना खून-पसीना बहाता रहता है ।

इसीलिए हरभजन मे भी सरदारजी को कभी-कभी बहुत गहरा सौदर्य-बोध दिखाई देता है । कई-कई औरतें रखना, फिर उन्हे निकालना और पैतालीस-छियालीस की उम्र में भी दिन-रात झगड़ने और आल्हा कवित्त-गाने के लिए तैयार रहना—शायद, हरभजन भी ऐसा सब-कुछ इसी लिए करता है कि वह हमेशा एक ऐसी जिंदगी के तलाश में रहता है, जिसे मनुष्य अपनी आँखो मे हमेशा मशाल की तरह जलाए रहना चाहता है ।

हो सकता है, सरदार जी थोड़ा-सा इस कारण से भी हरभजन से सहमते हो, कि दोनो की उम्र और दोनो की मनोवृत्ति एक-सी है ।

तलाश अलग-अलग जिन्दगी की हो सकती है मगर तलाशी की मनो-वृत्ति एक है ।

हरभजन मजदूरिनो की टोलियो में से किसी ऐसी जवान या कैंडे वाली औरत को ढूंढता रहा है, जिसे घर मे लाकर, वह पहली वालियो मे से किसी को निकाल सके । ..और सरदार जी सिर्फ इतनी-सी तलाश रखते है, कि बॉह उठा कर ईटें उतरवाती, या दो-मजिले-तिमंजिले पर ई ट-गारा चढ़ाती औरतो मे से कुछ ऐसी भी हों, जिनको छूने, जिनसे हँसकर बोलने और जिन्हे सतर्क आँखो से देखने की तृष्णा अनुभव की जा सके । सतर्कतापूर्वक देखने की बात सरदार जी सिर्फ इसलिए सोचते हैं, कि वो महसूस करते है—अपनी सुख की अनुभूतियो को हरेक मनुष्य औरो की दृष्टि से बचाए रहना चाहता है । फिर चाहे वह सतवंत सरदारनी की लायी हुई रोटियो और तरीदार गोश्त के स्वाद का सुख हो—या कि बिंदो और मुगनी-जैसी मजदूर औरतो को देखने या छूने का सुख—सरदार जी से ऐसे हरेक सुख को तीरथराम की जैसी काइयाँ और हरभजन की जैसी खूँख्वार आँखो से बचा कर भोगना पसंद करते है ।

पानी पीकर, लौटते हुए, सरदार जी ने फिर एक बार पगड़ी को जरा-सा ऊपर को उठाया और सभी मजदूरो की ओर गौर से देखा, जैसे सबेरे नही गिने हो, इस समय पहली बार गिन रहे हो । देखते-देखते, उनकी दृष्टि पसीने मे नहाई हुई रामप्यारी पर पड़ गयी । गिनती में एक के बढ जाने के बोध के साथ-साथ, उन्होने यह भी महसूस किया, कि पिछले दो महीनो से एकरस चले आ रहे वातावरण मे आज कुछ परिवर्त्तन आया है । हरभजन से लेकर तीरथराम तक के चेहरे ऐसे दिखाई पड़ रहे थे, जैसे आज कपूर साहब ने मजूर कर लिया हो, कि वो एक सप्ताह की मजदूरी सारे मजदूरो को अग्रिम दे देंगे, ताकि मजदूर सर्दियो के लिए कपड़े, रजाइयाँ और गुड़ वगैरह

खरीद सकें। मगर सरदार जी जानते है, कि सर्दियो में मजदूर शराब पीते है और बिना रजाई ओढ़े सो जाते है। और, जिन मजदूरो की औरतें खुद शराब नही पीती है, वो अक्सर अपने बच्चो को लपेटती हुई राते काटती है।

सरदारजी सोचने लगे, कि जैसी हँसी मजदूर मर्दो के चेहरो पर अक्सर शराब पी लेने के बाद ही फैलती है, ठीक वैसी ही हँसी नयी-नयी आयी रामप्यारी की पसीने से लथपथ देह को देख कर भी फैल रही है। ईंटे चढाने-उतारने के बाद रामप्यारी वापस लौटती है, तो एक-न-एक छीटा उसकी ओर उछाल दिया जाता है।

सरदार जी ने हरभजन को यह कहते नही सुना कि 'यह औरत तो गाभन दिक्खे है! क्यो, ताई, ऐसे मे तो बोझ उठाना ठीक नही होता है ?'

रामप्यारी ने भी नही सुना था।

सरदार जी ने रत्तो ताई को यह कहते भी नही सुना है, कि 'मने तो या औरत खसम की छोडी हुई दिक्खे है, हरभजन ! पहले तो कही ना दिक्खी थी मजदूरी करती ? लगे है, हाल की ही छूटी हुई है ?'

रामप्यारी ने भी नही सुना था।

सरदार जी ने सिर्फ तीरथ राम बढ़ई को यह कहते सुना है, कि 'सरदार जी, अब के दिल्ली शहर मे तरबूजो का मौसम सर्दियो मे ही आ लिया दिखता है !'

रामप्यारी ने इस बार भी नही सुना है।..... मगर तीरथराम की बात पर जैसे चारो ओर हँसी फैलती चली गयी है, उसे रामप्यारी ने सुन लिया है। इस बार रामप्यारी ने छाती पर तिहरी की हुई धोती को इकहरी कर लिया और पाँवो की तरफ को लम्बा कर लिया। कुछ पहले से ही गंदी हो गयी थी, कुछ गारे-पसीने से और ज्यादा हो गयी है। पसीने के कारण चिपचिपी हो चुकी है। जहाँ-जहाँ चिपचिपी हो

हो चुकी है, वही-वही कँटीले के पत्ते और ज्यादा तेजी से चुभते हुए महसूस होते है।

सबेरे की तीखी सर्दी, शायद, पसलियों मे धँस गयी है... ..मगर पसलियो पर टिके हुए माँस के कंडो से कोई आँच ऐसी नही मिलती, जो पसलियो के भी पार तक धँसी हुई ठंड को दूर कर सके। रामप्यारी महसूस करती है, कि जैसी आँखो से उसके कद्दावर जिस्म को मजदूर लोग घूरते है, वैसी दृष्टि से कोई भी औरत अपने पति या पुत्र के द्वारा भी देखा जाना पसन्द नही कर सकती। पुरुषो की जिस दृष्टि मे औरत की धार्मिक स्तूपो के अन्दर रखी हुई पवित्र अस्थियो-जैसी पसलियो पर टिके हुए स्तनो की मासलता के परे के नारीत्व को—सौन्दर्य या मातृत्व को—देख सकने की सामर्थ्य नही होती, उसमे और कॅटीले के पत्तो मे रामप्यारी को सिर्फ इतना ही फर्क महसूस होता है, कि कॅटीले के पत्ते खुद ही किसी को नही जा चुभते है। कॅटीले के पत्तो की चुभन कभी भी वहाँ तक नही पहुँच सकती है, जहाँ तक ऐसी अवांछित पुरुष-दृष्टि पहुँच जाती है। रामप्यारी अनुभव करती है, कि अपनी कोख की व्यर्थता का बोध भी उसे उतनी दुसह यन्त्रणा नही पहुँचाता है, जितना अपनी छाती की विद्रूपता पहुँचाती है।

रामप्यारी जोर-जोर से चिल्ला-चिल्ला कर, कुछ कहना चाहती है, मगर धीमे स्वर मे भी कुछ कह नही पाती है। जब भी लोगो की आँखो और हथेलियो को रामप्यारी चुभते हुए महसूस करती है, उसे लगता है, इनके दबाव से उसके अन्दर दबी हुई कोई चीज तेजी से बाहर को फूट आना चाहती है। और, ऐसे क्षणो मे, रामप्यारी सोचती है, कि वो औरते भी ठीक ऐसी ही मानसिक यंत्रणाये अनुभव करती होगी, जिनकी कोख पर लात पड जाती है।

रामप्यारी ने अपने ही गाँव मे एक रिश्ते की भौजी को तब ठीक अपनी ही तरह गुमसुम देखा था, जब उसके पति ने उसको लातें मारी

थी। रामप्यारी इस क्षण सोच पा रही है, कि उस समय उसकी वह रिश्ते की भौजी भी, शायद, अन्दर-ही-अन्दर ठीक उसी की तरह चीखने-चिल्लाने को तड़प रही होगी।

रामप्यारी इसीलिए ठीक उसी की तरह गुमसुम ईंटें ढोने चली जाती है। रामप्यारी नही समझ पा रही है, कि वह गर्भवती नही होते हुए भी आखिर अपने को चोट खायी हुई गर्भवती औरत की-सी मन-स्थिति में क्यो पा रही है? रामप्यारी गुमसुम ईंटे उठाये चली आती है और उतार देती है।

चारो तरफ से हँसी झाड़ू की सीको से उलीची जा रही कीचड की तरह उसे अपने ऊपर गिरती हुई महसूस होती है, मगर रामप्यारी उतार देती है।

काम थम गया था। सभी मजदूर-मजदूरिनो ने रोटियाँ निकाल ली थी। औरो को रोटियाँ निकालते देखकर, रामप्यारी को याद आया कि उसने कल रात स्टेशन मे ही पूड़ियाँ खायी थी, तब से कुछ नही मिला है। रामप्यारी उठ कर, एक ओर चली गयी और लकड़ी के तख्तो के बीच जा बैठी। बड़े जतन से धोती की किनारी की गाँठ खोली—दस-दस नये पैसे के तीन सिक्के दिखाई दे गये। न-जाने कब से थमे हुए आँसू टपाटप गिरते चले गये। रामप्यारी को लगा, तख्ते पर गिरते आँसुओ की आवाज को वह साफ-साफ सुन रही है।

याद आया, जो टीन का सन्दूक मातादीनसिह की कोठरी मे छोड आयी थी, उसमे सिर्फ पहनने के कुछ कपड़े ही नही, बल्कि कुछ रुपये भी थे। ले आती, तो कितने काम आते? अब मजदूरी मिल गयी है, मगर रहने को जगह नही, खाने को कुछ नही। बदलने को एक धोती-कुरती तक नही।...इतनी दयनीय स्थिति तो जिन्दगी मे पहले कभी नही आयी थी।

रामप्यारी को यह भी याद आया, कि शनिवार की शेषरात के अलावा, रविवार का समय रेलवे-स्टेशन के मुसाफिरखाने में ही गुजा-रते हुए भी कई बार उसे अपने सन्दूक की याद आयी थी। कई बार मातादीन की कोठरी मे जाकर, सन्दूक ले आने की इच्छा मन में उमड़ी थी और रामप्यारी जानती थी कि वह रात के आने के रास्ते से ही दुबारा वहाँ तक पहुँच भी सकती है—मगर वह नही गयी थी। मातादीन की कोठरी लगभग आधा मील से ज्यादा दूर नहीं थी, मगर रामप्यारी नही गयी थी। उसने हर बार यही सोचा था, कि मातादीन के यहाँ वापस जाना अपनी जिन्दगी के किन्ही उन्ही क्षणो की मन-स्थिति में वापस लौटना है, जिन्हे वह अपना भविष्य बनाने की तृष्णा लेकर आयी थी, मगर वर्त्तमान भी नही बना सकी।

रामप्यारी ने इस समय भी यही सोचा, कि सन्दूक के छूट जाने के बाद से जो यह एक अजनबी-सी स्थिति उसके सामने आ गयी है, इसकी यत्रणा उसके लिए एकदम नयी है—और इस यत्रणा को सदूक के छूट जाने के पश्चात्ताप से और ज्यादा बड़ी बनाना, याकि सदूक को अब वापस ले आने की कल्पना से हल्की कर लेना, दोनो ही उसके लिए गलत है। रामप्यारी ने आँसू पोछ लिए। सोचने लगी, अपनी इस वर्त्तमान यत्रणा से अपने अतीत के साधनों से मुक्ति पाना फिर अपने उसी वर्त्तमान की ओर वापस लौटना है, जिसमें छै-छै पुरुष नागफनी के पौधों की तरह अपने चारो ओर सोये रहते है, मगर उसके अन्दर की औरत जात को कोई भी नही देख पाता है।

रामप्यारी, शायद, सोचना चाहती है, मगर इतनी गहराई तक नही सोच पाती है, कि अपने अतीत मे उसने जो-कुछ अनुभूतियों के रूप में सहेज रखा है, उसकी प्रतिक्रियाओ से उत्पन्न आत्म-बोध की यन्त्रणा से मुक्त हो जाना ही उसका भविष्य बन सकता है। भविष्य,

जिसको रामप्यारी स्पष्ट अनुभव नही कर पाती है, मगर जिसकी खोज मे रामप्यारी है ।

रामप्यारी सोचती रही कि जब तक कही आश्रय नही मिल जाता, तब तक का समय उसको पाने की चिन्ता मे ही बीत जायेगा । रामप्यारी सोचती रही कि जिस-जिस क्षण वह अपने मानसिक-तनाव से मुक्त होती है, ठीक उसी क्षण उसे भूख भी ज्यादा महसूस होती है । यह भी याद आता है, कि सर्द तीखी हवाओं मे से कोई उसकी पसलियों से नागिन की तरह लिपट कर, अन्दर ही रह गयी है और छाती मे दर्द हो रहा है । चलते मे सिर झनझनाने लग गया था । आँखो की पुतलियों मे दाह ऐसे उफन रहा था, जैसे लोहार की धौकनी चलने पर अगारो मे दहकती हुई दरातियाँ निरन्तर और ज्यादा लाल पड़ती दिखाई देती है ।

रामप्यारी उठने को हुई, कि मजदूरो के खाने-पीने तक कही चाय की दुकान की ओर चली जाए और एक 'एस्प्रो' की टिकिया चाय के साथ ले ले ।

सरदारजी कई बार, औरो से बचाकर, रामप्यारी की ओर देख चुके थे । रामप्यारी की पीठ उनकी ओर थी और खुद सरदार जी दूसरे मजदूरो की ओर पीठ करके रोटियाँ खा रहे थे । मगर रोटी के टुकड़े को जब भी शोरबे मे डुबोने लगते थे, लगता था, आज उनके खाने पर किसी की नजर लगी हुई है । घर मे तो हमेशा ही अनुभव करते रहे है सरदार जी, कि बीबी-बच्चो के साथ बैठकर खाने मे और ज्यादा स्वाद का सुख मिलता है, मगर मजदूरो के बीच औरों की आँखों से बचाकर खाना ही उन्हे पसन्द था । लेकिन इस समय सरदार जी अनुभव कर रहे थे, कि उनका खाने का सुख खण्डित हो रहा है । उन्होने दो बार दो-तीन तन्दूरी रोटियाँ अलग निकाल कर रखी और उन पर अचार भी रख दिया, मगर सकोच नही टूट सका । उन्हे लगा कि

तीरथराम और हरभजन की आँखों के सामने वो अपने खाने के इस खण्डित हो गये सुख को नही जोड़ पायेंगे। दोनों बार उन्होने रोटियाँ फिर अपने रूमाल मे वापस रख लीं, मगर उन्हे तोड़ा नही।

मजदूरो मे से भी कई-एक की इच्छा रामप्यारी से पूछने को हो रही थी कि उसके पास तो खाने को कुछ दिखता नही। खा भी आयी है, या नही।...मगर रामप्यारी को लेकर वो आपस में जितनी भद्दी-भद्दी बातें कर चुके थे, उसके बाद, रामप्यारी से बाते करने का साहस किसी को भी नही हो पा रहा था।

रामप्यारी उठने लगी थी, कि तभी सामने से मजदूरों की ओर आती हुई कपूर साहब की माँ ने आवाज लगा दी—"अरे, सरदार जी, वो बेचारी नई मजदूरनी कहाँ बैठी है ? उसको भी कुछ खाने को किसी ने दिया या नहीं ?"

अब सरदार जी उठ पड़े। बोले—"माँ जी, मेरे पास बची हुई है रोटियाँ। चोक्खी है एकदम। खाती हो, तो दे दूं। अचार भी चोक्खा है ."

कपूर साहब की माँ ने रामप्यारी को ओर जाते-जाते कहा—"अरी ओ, आ मेरे साथ चली आ। फूलाँ कहती है कि खाना काफी बचा हुआ है।" और लौट पड़ी। सरदार जी ने रोटियो को फिर वापस रूमाल मे रख लिया। उन्हे लगा, कि अभी तक अपनी जिस मनस्थिति को वो तीरथराम और हरभजन से छिपाने का प्रयत्न करते रहे थे, वह उघड़ चुकी है। 'सत्तसिरी अकाल' फुसफुसाते हुए, उनकी आँखे थोड़ी-सी नम हो आयी।

रामप्यारी ने अनुभव किया, कि बुढ़िया अपनी स्नेहपूर्ण आवाज के प्रति आश्वस्त है, इसीलिए पीछे मुड़कर नही देखती है, कि रामप्यारी आ भी रही है, या नही। मजदूरों के सामने से निकलते हुए रामप्यारी ने फिर अपने चारो ओर हँसी फैलती हुई अनुभव की। और उसे लगा,

कि उस हँसी के दायरे से बाहर निकलते हुए वह ठीक वैसा ही अनुभव कर रही है, जैसा कोई हथिनी कीचड़ के तालाब मे से बाहर निकलते समय अनुभव करती होगी ।

खाना खा चुकने पर, श्रीमती कपूर के 'ना-ना-महरी माँज लेगी' कहने के बावजूद, रामप्यारी ने बहुत-से बरतन माँज कर रख दिये । कपूर साहब की माँ एक बार कह गयी थी—'पेट भरके खा लेना, शरम मत करना ।'

रामप्यारी सोचती रही थी, कि अपने पीछे के सम्बल को खो देने का पश्चात्ताप न करना बुरा नही है । बरतन माँज चुकने के बाद, रामप्यारी ने श्रीमती कपूर को हाथ जोड़े और मजदूरो की ओर वापस लौटने लगी, तो श्रीमती कपूर ने पूछ लिया कि 'क्या तेरे पास दूसरी धोती नही है ?'

अब कही रामप्यारी ने देखा, कि इस ओर आते समय तख्ते के कोने से धोती जाँघ के पास से फट चुकी है । उसने फटे हुए हिस्से को दूसरी तरफ घुमा लिया । फिर कह दिया—"नही है, बीबी जी ! कोई दूसरा कपड़ा नही है । नयी-नयी मजदूरी मिली है आपकी मिहर-बानी से..."

इतना कहते-कहते ही, रामप्यारी को यह बोध हो आया, कि कही श्रीमती कपूर यह न सोचने लगें, कि मजदूरी पर तो नयी-नयी आयी हुई हो सकती है रामप्यारी, मगर इस दुनिया मे नयी-नयी आयी हुई तो नही हो सकती । रामप्यारी सहम गयी, कि श्रीमती कपूर भी रत्तो ताई की तरह यह अनुमान न लगाने लगें, कि कही पति की परि-त्यक्ता तो...

शायद, अपने जीवन के यथार्थ को औरो के सामने सहज आत्म-स्वीकृति देने मे असमर्थता का बोध ही अपनी मनस्थिति के उस वर्न्न-

मान को जीना है, जिसे कालचक्र भी अतीत नही बना पाता है। रामप्यारी महसूस करती है, कि अपनी मनस्थिति को ज्यों-का-त्यों बनाए रहना ही अपने वर्त्तमान को भविष्य न बनने देना है। रामप्यारी महसूस करती है कि दिनो, महीनो और वर्षो के कालचक्र के रूप में आने वाले समय का भविष्य किसी भी मनुष्य की मनस्थिति का भविष्य नही हो सकता।

रामप्यारी सब-कुछ सच-सच बोलने को हो आती है, मगर यह अनाश्वस्ति नही दूर होती कि उसमे सच बोलने की सामर्थ्य आ भी आए, तो उसको बर्दाश्त करके भी रामप्यारी के प्रति सवेदनशील रहने की उदारता का दूसरो मे बना रहना संभव नही है।

रामप्यारी फिर झूठ बोलने की तैयारी करने लगती है।

श्रीमती कपूर एक पुरानी धोती और ब्लाउज ले आई थी। रामप्यारी को देते हुए बोली--"ले, लेजा। मै समझती हूँ, मेरे कपडे तुझे ठीक ही आएँगे ?" पूछते-पूछते उन्होने एक नजर अपने ब्लाउज पर भी डाल ली और हँस पड़ी--"तू 'ब्रेसरी' नही पहनती है ? लम्बी कुरती पहनती है ? ब्लाउज तुझे छोटा तो नही पडेगा ? अच्छा, सलवार-कुरता नही पहनती ? हमारे सरदार जी तो हमे अक्सर टोक देते है, कि मोटी औरतो को सलवार-कुरता नही पहनना चाहिए।"

श्रीमती कपूर फिर हँसने लग गयी थी। रामप्यारी धोती-ब्लाउज लेकर, हाथ जोड़ती, चली आयी। चाहती थी, कही ओट मे कम-से-कम धोती बदल ले। मगर फिर उसने महसूस किया, कि मजदूरों के सामने ही कपडे बदलने को जाने का अर्थ उनके द्वारा अपनी देह को उघड़ा देखे जाने के अहसास को सब के सामने उघाडना है। . और कपड़ो के उधड़े रहने से भी कही ज्यादा संकोच अनुभूतियों के उघड जाने से होता है।

रामप्यारी ने पहनी हुई धोती के फटे सिरे को और भी पीछे

सरका लिया, ताकि वह धोती के पलटे के नीचे आ जाए और पटरी उठाकर, मजदूरनो के साथ चल पड़ी। शाम होने-होने तक मजदूरो मे यह कौतूहल मँडराता ही रहा, कि आखिर यह कद्दावर औरत कौन है, कहाँ से आयी है ? इसका कोई है भी, या नही ? आखिर सबने मिल कर, रत्तो ताई को उकसाया, कि वह रामप्यारी से उसके बारे मे विस्तार से पूछे।

रत्तो ताई कई बार रामप्यारी को साथ बिठा कर बीड़ियाँ पीती और पूछती रही। छुट्टी होने मे कुछ ही समय बाकी रह गया, तो हरभजन ने आँखो की पलके ऐसे ऊपर को टिमटिमाईं, जैसे मिट्टी में दबी हुई किसी हड्डी को खोजते हुए कुत्ता अपनी पूँछ को ऊपर को हिलाता है।

रत्तो ताई बोली--"रामप्यारी तो मेरे ही धोरे रैंने को आवेगी, हरभजन ! बेचारी का इस दुनिया मे कोई भी तो ना है दूसरा।"

●

४

ढोलकियो पर अँगुलियो की मृदङ्गबाजी थापे तेज, और तेज होती जा रही है। रामप्यारी महसूस करती है, कि झुग्गियो की इस बस्ती मे जिस कोने तक उसकी दृष्टि जाती है, वही से कोई-न-कोई मर्द, औरत और बच्चा——एक अजीब-सी सामूहिक जिदगी का कोई-न-कोई टुकडा उसकी तरफ को बढ आता है। रामप्यारी रत्तो ताई की झुग्गी मे अकेली बैठी हुई है। रामप्यारी को लगता है, कि वह अपनी कद्दावर पीठ पर न-जाने कितनी हथेलियो की थापे पड़ती महसूस करती है। मजदूरो की इस बस्ती की सामूहिक जिदगी के बीच रामप्यारी अपने को एक ऐसी मनस्थिति में पाती है, जिसमे दूसरो की सामूहिकता का बोध अपने अकेलेपन को या तो उनसे जोड़ देने और या एकदम विच्छिन्न कर लेने के मानसिक-तनाव मे से गुजरने को बाध्य कर देता है।

खेलते-कूदते और हँसते-रोते हुए मजदूरों के बच्चो और लड़ती-झगडती या खिलखिलाती मजदूरिनो और जोर-जोर से बोलते, गालियाँ

देते या कवित्त-भजन गाते हुए मजदूरों—घडी-घड़ी तालाब और नाले की तरफ जाकर, फिर झुग्गियो की ओर लौट आने वाले सुअरो और कुत्तो—की सामूहिकता में रामप्यारी को ठीक वैसा ही आकर्षण अनुभव होने लगा है, जैसा ऊँचे टीले पर से नीचे फैली हुई गहरी झील को देखते हुए अनुभव होने लगता है। वह महसूस करती है, इस बस्ती मे गरीबी की कीचड इतनी फैली हुई है, कि यहाँ जब भी कोई बच्चा हँसता है, जब भी कोई बूढा खिलखिलाता है, जब भी कोई जवान ठहाका लगाता है, जब भी कही से कवित्त पढ़ने की ऊँची गूँज उठती है, जब भी कही से 'पिया बजावे बाँसरिया' की महीन तान सुनाई देती है—जब भी अभावो की नीवों पर ऐतिहासिक खॅडहरो की तरह टिकी हुई मानवीय-जिजीविषा मस्ती की हवाओ मे आर-पार तक सनसनाने और प्रतिध्वनित होने लगती है—तब-तब हर बार ऐसा लगता है, कीचड़-भरे तालाब मे जोरो की लहरें उठी हैं, तालाब भर मे फैली हुई सेवार इधर-उधर फट गयी है और कमल के फूल मेढकों की तरह ऊपर निकल आये है। हर बार ऐसा लगता है, कि मनुष्य की जिंदगी ऐतिहासिक खँडहरो मे प्रतिध्वनित होती हुई आवाज की तरह अपने कानो के अन्दर उतरती जा रही है।

रामप्यारी को सिर्फ ऐसा ही नही दिखाई देता है, यह भी दिखाई देता है, कि अभावों से उत्पन्न मानसिक यंत्रणाओं के आगे कमजोर पड़कर पुरुष ठर्रे की बदबू से भिनभिनाती गालियो को ऐसे उगलते है, जैसे कोई गुड़ की भली पर बैठी हुई मक्खियो को उडाए और वो चेहरे पर आकर बैठ जाएँ। औरतें पाले के मारे हुए पपीते के पेडों की तरह प्रताड़नाओ की आँधी मे ऐसे कॉपती चली जाती है, जैसे कोई उनकी पीठ पर बाँस फँसाकर उन्हे कठपुतलियो की तरह नचा रहा हो। लावारिश-से छूटे हुए बच्चे कचरे के डिब्बे में घुसे हुए कुत्ते के पिल्लों की तरह आपस मे किंकियाने लगते है। रामप्यारी

इन सबकी ओर से आँखें मूँद लेती है, तो सामूहिकता की ये वीभत्स-सी लगने वाली आवाजे कानो को बेधने लगती है, और कमल के सारे फूल सतह पर आये हुए मेढको की तरह एकाएक नीचे डूब जाते है।

रामप्यारी को रत्तो ताई की इस झुग्गी मे आये कई दिन हो गये है, मगर रामप्यारी अभी भी यह निर्णय कर सकने की स्थिति मे नही आ पायी है, कि उसे रत्तोताई की झुग्गी छोड देनी चाहिए, या नही। रत्तो ताई ने हरभजन चौधरी को लेकर जो-कुछ कहा है, उसको ठीक वैसे ही बाहर निकाल फेंके, या नही, जैसे कान मे से आधा अंदर घुसा हुआ कनखूजरा बाहर निकाल फेंका जाता है।

बिल्कुल सामने जो झुग्गियो की समानातर कतार है, उसी में हरभजन चौधरी की तीन एक साथ जुडी हुई झुग्गियाँ है। रत्तो ताई कहती थी, कि हरभजन ने ये तीन झुग्गियाँ जब डाली थी, तब उसकी तीन घरवालियाँ थी। हरभजन की तीनो एक साथ जुडी हुई झुग्गियों को देखकर, रामप्यारी भी ऐसा ही महसूस करती है।

अजीब बात है, कि आज रात की मजलिस भी हरभजन चौधरी की बैठक मे ही जुड़ी हुई है। हो सकता है, बिरादरी का सबसे दबग होने के नाते हरभजन के ही यहाँ ज्यादा महफिलें जुडती हो ? रामप्यारी को लगता है, कि इन पिछले तीन दिनो से लगातार हरभजन चौधरी सिर्फ उसके लिए नाच-गाने करवा रहा है। उसको यह महसूस कराने के लिए, कि रत्तोताई ने झूठ नही कहा था। रत्तो ताई ने कहा था—"देख, रामप्यारी ! थारी तो सारी कहाणी मैं जान ही गयी ? मेरे लिए तो तू बेट्टी के बरोबर है के। देख ही लिया है तूने, कि मेरा तो और कोई दूसरा जोरू का खसम, बेटी का जवाँई तो है ही ना। तू मेरे ही धोरे हमेशा पड़ी रहे, तो मेरे को तो घणा मजा ही है के नही ? मगर, देख, औरत की जात की तो हथिनी भी बिना महावत की अच्छी ना दिखती ससुरी ! है के नही ? अब तू जान, कि किसी

एक का चकला-बेलना तो उसे सँभालना ही पड़ता है के ? अब हर-भजन बेटे की यो जान कि मेरा सग्गा भतीजा लगे है छोरा। जात-बिरादरी मे पट्ठे का कोई जोड ना है। और औरत जात की तो तू जान के, जिसने जबरा खसम पा लिया, ससुरी सारी दुनियाँ की नियामत पाली। जबरा खसम ससुरा भला माने, तो भी घणा सुख मिले और ससुरा गुस्सा हो जावै, तो भी। और तू जान कि बुरा मानने की तो इसमे कोई बात ही ना है, के जैसा तैसा बदन-टूटा मरद तो थारे धोरे आता भी डर जावेगा।"

अपना कहना समाप्त करके, कल रत्तो ताई बडी जोर से हँसी थी और रामप्यारी ने उसके नथुनों से निकलते हुए बीड़ी के धुएँ को कन-खजूरो की तरह मुड़-मुड कर अपने कानो मे घुसता हुआ महसूस किया था।

मगर रामप्यारी को कल रत्तो ताई की हँसी कुछ अजनबी-सी भी लगी थी। ..और अब अपनी जिंदगी में जो-कुछ भी अजनबी लगने लगता है, उसे रामप्यारी एकाएक नकार नही पाती है।

रामप्यारी कल भी एकदम नकार नही पायी थी। बोली थी—"ताई, पाँच दिन भी तो मुझे इस बस्ती मे आये हुए ना हुए और. "

रत्तो ताई फिर हँस पड़ी थी—"ए-ए-ए-एरी, रामप्याँरी ? बेट्टी, तू यों सुसुरे बडे लोगो के कबीलो की छोरियो की जनी क्या बोले है ? मेरा जो चला गया ना, हरभजने का ताऊ ? वो यो कहा करे था, कि जितने दिनो मे ससुरे बड़े घराने के छोरे अपनी घरवाली से कोरी बातें और नखरे करें ना, उतने दिनो मे तो हमारे कबीले का मर्द बच्चा भी पैदा कर लेवे है के।.. हे-हे-हे.. तू जान, कि हम गरीब मजदूर लोगो के कबीले मे कोई हीर-राँझे की जोडी की जनी तो पिरेम किया नही जावे, कि अभागी हीराँ छोरी कच्चे घडे पर चढ़के नद्दी पार करे और ल्ले गहरे तलाब मे डूब जावे।.. तूँ जान, कि हरभजन ये

जो बिंदो को पिछले साल लाया है ना, मुँगरी के इतकाल पर ? ये मर्दानी तो अपने हाथो से गिन-गिन के रख आयी हरजाने के दस-दस के लोट अपने ब्याहते खसम के हाथो में और चली आयी।"

रामप्यारी को ऐसा सब-कुछ अजनबी लगता है। अपने अतीत मे जो-कुछ न आ चुका हो, वैसे का वर्त्तमान मे आना अजनबी-सा लगता ही है। और अजनबी-से लगते हुए वर्त्तमान को रामप्यारी ठीक वैसे ही नही नकार पाती है, जैसे कोई गृहिणी, अपने दरवाजे पर आ खड़े हुए किसी जवान संन्यासी को एकाएक विदा नही कर पाती है। जिस उम्र मे पुरुष अपनी हथेलियो को नागफनी के पत्तो की तरह आडी-तिरछी फैलाते रहना चाहता है, उस उम्र मे अपनी ही हथेलियो से सारी देह मे भभूत मल कर सामने आ खडा हुआ सन्यासी हर किसी औरत को अजनबी लगता है। अपने अतीत बन चुके पुरुष की अपेक्षा अपने वर्त्तमान के रूप मे दिखते हुए पुरुष मे औरत को भले ही सिर्फ एक ही क्षण का आकर्षण क्यो न दिखे, मगर दिखता जरूर है। राम-प्यारी को अपने अतीत बन चुके छोटे मास्टर सतपाल सिंह की तुलना मे एकदम तेज और ऊँची आवाज मे बोलता हुआ हरभजन चौधरी बहुत अजनबी लगता है। रामप्यारी को उस देह और आत्मा दोनों से क्षुद्र पड़े हुए पुरुष की अपेक्षा बघेरे की तरह मूँछें हिलाता हुआ हरभजन चौधरी सचमुच बहुत अजनबी लगता है, जिसे अरहर के खेत मे छुप कर देखते हुए अपनी आँखों की पुतलियो को ठीक वैसे ही हिलाना पड़े, जैसे मुर्गी अपने काने अंडो को हिलाती है।

रामप्यारी श्रीमती कपूर की दी हुई धोती के किनारे की डोरियो मे से कभी किसी, कभी किसी डोरी को ठीक कर कनखजूरे की तरह मोड़कर अपने कानो मे डालती है। रामप्यारी महसूस करती है, कि कनखजूरा जब कान के अंदर उतरने लगता होगा, तो एक अजीब-सी गुदगुदी जरूर अनुभव होती होगी। रामप्यारी सोचती है

कि कनखूजरे के कान मे नीचे तक उतर जाने के आतंक के बावजूद, एक अजनबी-सी गुदगुदी हमेशा महसूस होती रहती होगी।

हरभजन चौधरी को देखते हुए, उसकी किसी भी बात का जवाब देते हुए, रामप्यारी ऐसा ही महसूस करती है। एक प्रकार का आकर्षण भी और आतंक भी—बिल्कुल अजनबी-सा आकर्षण और आतंक—और रामप्यारी अपने वर्त्तमान को बदलता हुआ महसूस करने लगती है।

हरभजन चौधरी ने कई बार बिंदो को लगा दिया है, उसे बुलाने को। बिंदो कई बार कह गयी है, कि 'चल, रामप्यारी, तू भी हमारे धोरे बैठके सुन ले नाच-गाना ?' रामप्यारी कई बार एक अजनबी की तरह चौंक उठी है, कि बिंदो चौधरानी के 'हमारे धोरे' से मतलब अपने साथ बिठलाने से तो नहीं है ?

ढोलकियो पर ज्यो-ज्यों थापें तेज होती जाती हैं, त्यों-त्यो रामप्यारी अपने को इस झुग्गियों की बस्ती की सामूहिकता से जुड़ता हुआ महसूस करती है। हरभजन जोर से कवित्त गाता है––पिया मोरे संदेश भिजावें, नैणा तो तरसें-ऐं-ऐ . ..सासू बैठी दरवज्जे पे, निकलूं ना डर से।. निकलूं ना डर सें, मोरे रामा, निकलूं ना डर सें-ऐ-ऐं-ऐं .. .पिया खड़े बाँसरी बजावें, नैणा तो तरसें।

हरभजन चौधरी अपने को ही सम्बोधित करता हुआ-सा लगता है, तो रामप्यारी को आकर्षण, आशंका और जुगुप्सा की एक साथ तीव्र अनुभूति होती है। इन तीनों को एक साथ नकार देने या स्वीकार लेने का निर्णय कर सकने की स्थिति में रामप्यारी अभी तक नही पहुँच सकी है। रामप्यारी अपने अकेलेपन के वर्त्तमान से आगे बढ़कर औरों की सामूहिकता से जुड़ जाने के भविष्य को अभी तक नही स्वीकार सकी है रामप्यारी अभी तक ठीक उसी तरह की मनस्थिति में है, जैसी कनखजूरे के आधा नीचे उतर जाने पर अनुभव होती

है । जैसी मनस्थिति किसी भी औरत की तब हो सकती है, जब उससे एक अतीत बना हुआ पुरुष छूटने लगता है और वर्त्तमान बनता हुआ पुरुष उसकी जिन्दगी मे कनखूजरे की तरह आधा प्रविष्ट हो चुका होता है ।

हरभजन चौधरी को लेकर रामप्यारी अभी तक किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकी है, मगर निर्णय कर सकने की प्रक्रिया मे से गुजरते हुए भी मनुष्य, शायद, अपने को उन सारी मनस्थितियो से गुजरता हुआ महसूस करता है, जिन मनस्थितियो के यथार्थ मे से उसे निर्णय कर चुकने के बाद गुजरना हो ।

अभी हरभजन चौधरी ने खुद ही कोई प्रस्ताव नही रखा है, मगर रामप्यारी इस कल्पना से गुजर चुकी है, कि किसी भी क्षरण आकर हरभजन चौधरी ने यह पूछ लिया, कि 'क्यो, मेरी चौधरानी ना बनेगी ?' . ..तो ?

रामप्यारी के नजदीक आने पर अभी तक हरभजन चौधरी ने सिर्फ़ बाते ही की है, छुआ नही है । मगर रामप्यारी अपने को वैसी मनस्थिति से गुजर चुकी-सी पाती है, जैसी उसकी तब हो सकती थी—या हो सकती है—जब हरभजन चौधरी हाथ ही थाम ले ।

अभी तो न हरभजन ने ही जोर दिया है, न रामप्यारी ने स्वीकारा है, मगर फिर भी रामप्यारी कल से ही कई बार अपने को ऐसी स्थितियो मे पा चुकी है, जैसी स्थितियाँ उसके सामने तब आ सकती है, जब बिदो सौतिया व्यवहार करने लग जाए । अभी हरभजन चौधरी ने स्पर्श भी नही किया है, मगर रामप्यारी यह सोच-सोच कर नव-विवाहिता की-सी शर्म और परित्यक्ता की-सी आत्म-ग्लानि महसूस कर चुकी है, कि हरभजन चौधरी के साथ एक ही झुग्गी मे सोते हुए उसे न-जाने कैसी-कैसी अनुभूतियो और स्पर्शो से गुजरना होगा । अभी तक हरभजन चौधरी ने उसकी कद्दावर देह को

लेकर सिर्फ दूर से ही छींटे कसे है, मगर रामप्यारी यह सोच-सोच कर सहम चुकी है, कि कही कुछ ही दिनों बाद वह भी न उकता जाए ?

रामप्यारी को यहाँ यह याद दिलाने वाला कोई नही है, कि वह उस राजपूत घराने की बेटी है, जिसमे पराये पुरुष की छाया भी वर्जित मानी जाती थी। मगर फिर भी रामप्यारी बडी तीव्रता से उस वितृष्णा को अनुभव कर चुकी है, जो हरभजन चौधरी की घर-वाली बनने के बाद अनुभव की जा सकती थी और अपने को धिक्कारा जा सकता था।

रामप्यारी आकर्षरण, आशंका और वितृष्णा—तीनो ही स्थितियो से गुजर चुकी है।

इस बार रत्तो ताई चली आयी थी—"क्यो, री रामप्यारी ? तू अकेली-अकेली बैठी के करेगी इधर ? उरीने चली चलना म्हारे सँग ?"

रामप्यारी कहने को हुई कि 'ताई, अगर मुझे किसी के घर ही बैठना भी होगा, तो क्या ऐसा कोई नही मिलेगा, जो कुँवारा या रँडुवा हो ?'

रामप्यारी बोली—"मै यही बैठी-बैठी देख-सुन रही हूँ, ताई !"

रामप्यारी जानती है कि हरभजन चौधरी की बघेरे-जैसी मूँछो मे उसे खुद इसीलिए—सिर्फ इसीलिए—तो आकर्षरण महसूस होता है, कि रत्तो ताई उसे औरतो के मामले मे दबग बताती है।

अपनी समस्त आत्म-ग्लानि और अतीत के कटु अनुभवो के बाव-जूद, रामप्यारी एक बार फिर किसी पुरुष के साथ जुड कर जीने की तृष्णा सिर्फ इसीलिए तो रख पा रही है, कि कही अन्दर-ही-अन्दर वह महसूस करती है, कि पुरुषो को लेकर उसकी सिर्फ उपलब्धियाँ

ही खण्डित नही है, बल्कि अनुभूतियाँ भी खण्डित ही है। रत्तो ताई कहती है, कि 'मेरो भतीजो हरभजन तो ऐसो है कि किसी जनानी पे तबीयत ही जो आ जावे, तो पौठा मरोड़ के अपने धोरे बिठा लेवे ! इसका ताऊ भी ऐसो ही करतो रहतो थो के ? अब तूं जान के .. ' रामप्यारी जानती है, कि उसके अन्दर की औरत जात अब एक ऐसे पुरुष को भी देख लेना चाहती है, जो उसे उसका पौठा मरोड़ कर, अपने समीप बिठा सके। जो यों रिरियाता नही सुनाई दे, कि 'यह हथिनी तो मुझ से ना सँभलेगी।'

रत्तो ताई अभी भी खडी है, जैसे रामप्यारी को निर्णय करने के मानसिक-तनाव मे से गुजरता हुआ देख रही हो और ऐसा सोच रही हो, कि रामप्यारी का हरभजन चौधरी की महफिल मे चलने के लिए राजी हो जाना ही रत्तो ताई के प्रस्ताव को भी आत्म-स्वीकृति दे देना हो।

"मैं तो यही बैठी-बैठी सुनूंगी, ताई !"—रामप्यारी बोली।

रामप्यारी सोचने लगी, कि हरभजन चौधरी की घरबाली बनने, न बनने का निर्णय करने की सारी मानसिक प्रतिक्रियाओ मे से खुद वह गुजर रही है, रत्तो ताई नही। रामप्यारी तय करने लगी कि जिस निर्णय पर भी वह पहुँचे, उसकी सूचना हरभजन चौधरी को सीधे उसी से प्राप्त होनी चाहिए। रामप्यारी अपने मानसिक-तनाव को अब कुछ अजनबी-सा पाने लगी है और किसी भी माध्यम या बिचौलिये से जुड़ा हुआ अजनबीपन दोयम श्रेणी की अनुभूतियो मे बदल जाता है।......और दोयम श्रेणी की अनुभूतियाँ हमेशा मनुष्य को उसी वर्त्तमान मे बनाए रखती है, जो दिनो, महीनो और वर्षों के काल-चक्र की दृष्टि से अतीत बन चुका—या बन रहा—होता है।

रामप्यारी अपने अतीत मे नही लौटना चाहती है।

रामप्यारी अपने भविष्य को लिए कोई भी बिचौलिया नही चाहती।

रामप्यारी अनुभव करती है कि मास्टर सतपाल सिह, हरिहर सिह अहीर और मातादीन सिह चौकीदार—उन तीनो को उसने अपने भविष्य का बिचौलिया ही पाने की कोशिश की थी। रामप्यारी अब कही जाकर यह सोच पा रही है कि बिचौलिया खुद हटे, या अपने हाथो से हटाया जाए–बिचौलिये से जुडने या हटने की व्यर्थता का बोध दोनो ही स्थितियो मे एक-सा रहता है। रामप्यारी, शायद, कुछ ऐसा अनुभव करने लगी है कि अपने ही हाथो से किसी चीज से जुड़ने और अपने ही पॉवो से उससे दूर हटने के लिए जिन मानसिक द्विविधाओ और यंत्रणाओ मे से गुजरना पड़ता है, उन्हे अर्जित करना और भोगना ही अतीत की यत्रणाओ की पुनरावृत्ति से गुजरने से बचने का एकमात्र मार्ग होता है।

दुख यंत्रणाओ से कम उनको हर बार एक-सा महसूस करने को पुनरावृत्तियो से ज्यादा होता है।

रत्तो ताई ने कल या परसो ही कहा था, कि 'किसी दूसरी को होने वाले दर्द से अपनी गोद मे बच्चा नही आता है। औरत की छाती मे तो दूध तब आता है, जब कोख से खून देती है।'

रामप्यारी परसो से यह सोच-सोच कर शर्म महसूस करती रही है, कि कही ऐसा न हो, कि उसके कभी बच्चा भी हो, तो वह ठीक से उसका दूध ही न पी सके और फिर भूख के मारे रोये और चिल्लाए। रामप्यारी यह सोचते हुए हँस भी पड़ती है। रामप्यारी ऐसा सोचते हुए गहरे अवसाद मे डूब भी जाती है, कि जो पुरुष औरत के नारीत्व को ग्रहण कर सकने मे ही असमर्थ हो, वह चाहे फिर उसका प्रेमी हो, पति हो या पुत्र हो—रामप्यारी के लिए तो ऐसे किसी पुरुष का होना, न होना बराबर ही है!

रत्तो ताई वापस जा चुकी थी।

रामप्यारी बैठी ही है। रामप्यारी रत्तो ताई की झुग्गी मे बैठे-

बैठे ऐसा अनुभव कर रही है कि वह एक ऐसे अँधेरे जंगल मे बैठी हुई है, जहाँ ठीक उसके समानातर बघेरे की आँखें चमक रही है।

अँधेरी रातो मे बघेरे की आँखो की चमक, शायद, एकदम अजनबी-सी लगती होगी। रामप्यारी को ऐसा लगना है। रामप्यारी ने मिट्टी के तेल की डिबरी बुझा दी है। रामप्यारी अँधेरे मे किसी बघेरे की आँखो को टटोलना चाहती है।

सामने अभी भी ढोलकियो पर थापे पड रही थी। रामप्यारी का मन अपने को धिक्कारने को भी हुआ, कि अँधेरे मे ही उसने अपनी पुरानी कुरती क्यो उतार दी है और श्रीमती कपूर के दिए हुए ब्लाउज को क्यो पहन रही है। मगर रामप्यारी को उस मुश्किल से आधी पसलियो तक पहुँच पा रहे ब्लाउज को पहनते हुए कुछ नयेपन की अनुभूति हुई। डाक्टरनी के यहाँ उसने ऐसे ब्लाउज देखे जरूर थे, मगर पहनने की तृष्णा कभी नही हुई थी। बल्कि डाक्टरनी के एक बार यह पूछने पर कि वह 'ब्लाउज' क्यो नही पहनती, लम्बी कुर्ती ही क्यो पहनती है? उसने डॉक्टरनी से मजाक भी कर दिया था कि—'मालकिन, हमे तो ऐसा लगता है, कि जैसे हमारे डाक्टर साहिब आँखो के लिए चश्मे बनवाते है, वैसे ही शहर के दर्जी लोग इन बिलौजो को भी सीते है।'

कई बार कोशिश करने पर भी 'ब्लाउज' ठीक से नही बैठा, तो रामप्यारी ने उतार दिया और फिर कुरती पहन ली। रामप्यारी ने सुन रखा है कि जितनी घनी अँधेरी रात हो, बघेरे की आँखे उतना ही ज्यादा साफ-साफ देखने लगती है। तो क्या अँधेरे में अपने समानान्तर बैठे किसी बघेरे की आँखों मे किसी जंगली हथिनी को भी आकर्षण दिखाई देता होगा?

रामप्यारी ने मुट्ठी बाँधी और कई बार अपनी पीठ को कमर के पास जोर-जोर से ठोंक लिया। जिन्दगी के—अपने अतीत और

भविष्य के—अन्य सारे प्रश्नो से अलग हट कर सिर्फ एक प्रश्न की धुरी पर अपने को टिका हुआ पाना, उसे बहुत अजनबी लग रहा था।

एकदम सवेरे—लगभग मुँह-अँधेरे—रत्तो ताई तो चली गयी बिन्दो के साथ चाय-तमाखू पीने और हरभजन चौधरी आ के बैठ गया, रामप्यारी के बिलकुल समीप, तो रामप्यारी को कुछ भी ऐसा नही लगा, जिससे वह चौक उठती। बड़ी देर तक हरभजन चौधरी को बघेरे की तरह अपने पास बैठे हुए और बाते करते हुए पाकर, रामप्यारी को लगा, कि यह सब उसकी पुनरावृत्ति-मात्र है, जिसे वह कल ही भोग चुकी है। आखिर हरभजन चौधरी ने जब कह ही दिया कि, देख, यह मजूरो की बस्ती है। बेसहारा परदेसिन करके तेरे को सब जान गये है, और अब तूँ यो सोच कि जो ससुरा दारू-ताड़ी की झोक मे होगा, वो ही कुछ-न-कुछ छीटा जरूर मारेगा। अब तूँ भले ही ना माने, चौधरानी, मगर मेरा दिल तो भगवान कसम यही कहता है, के 'हरभजन, तेरी बड़ी चौधरानी ने ही इस परदेसिन को यो करके भेज दिया है, कि मेरे बाल-गोपाल ससुरी छोटी सौत से न सँभलते!' .अब तू ही कह, के कल बिदो चौधरानी ने तीन बरस के छोरे सुक्खू की पीठ पर लात तेरे ही सामने कसी, के नही? बेट्टी सियानी होती जा रही है, मगर छोटी चौधरानी उसे भी हाथ लगाते ना झिझके सुसरी! और जो छोटी थन की लगी बिचली मुँगरी चौधरानी छोड़ गई, सो तो रात-दिना टिटहरिया-सी टीकती रहती है। अब तूँ राजी हो जावे, तो मै भी यो जी हलका कर लूँ, के छोरे-छोरी की महतारी मरी ही ना है।' तब भी रामप्यारी नही चौकी।

रामप्यारी ने कल रात ऐसा अनुमान लगाया था, कि बघेरो की आँखो की चमक में बहुत आकर्षण होता होगा। रामप्यारी ने आज सवेरे ऐसा अनुमान लगाया, कि शायद, बघेरो की जीभ मे भी बड़ा

दुर्निवार आकर्षण होता होगा। रामप्यारी को एकाएक डॉक्टर साहब के घर की वह काली बिल्ली याद हो आयी, जिससे वह गर्मियों में अपनी पीठ चटवाया करती थी। रामप्यारी को यह भी याद आया, कि बिल्ली से पीठ चटवाने के लिए वह अपनी पीठ पर या तो छोटे बच्चों का बचा हुआ दूध फैला लेती थी और या अपने हिस्से का मास घिस लिया करती थी।

रामप्यारी को यह भी याद आया कि दूध चाटते समय बिल्ली हौले-हौले ही जीभ चलाती थी, मगर मास लगा होने पर इतने जोर-जोर से चाटने लगती थी, कि रामप्यारी का जैसा कद्दावर जिस्म भी कमानी की तरह मुड़ने को हो आता था।

तो क्या हरभजन चौधरी के घर बैठ जाने और कभी किसी बच्चे की माँ बन जाने पर रामप्यारी को यही अनुभव होगा, कि दूध देने की भावना बिल्कुल अलग और मास देने की यंत्रणा बिल्कुल अलग होती है? दोनो मे ही अलग-अलग आकर्षण होता है?

बिदो चौधरानी ने भी बिल्ली पाल रखी है।

हरभजन चौधरी इस समय जिस तरह बोल रहा था, रामप्यारी ने उसकी जीभ और मूँछो को ठीक वैसे ही हौले-हौले हिलता हुआ महसूस किया, जैसे डॉक्टर शर्मा की काली बिल्ली दूध चाट रही हो।

रामप्यारी चारपाई पर से उठ गयी। बोली—"बैठो, चाय बनाती हूँ।"

५

शर्म तो बहुत लगती रही थी, यह बोध भी बना रहा था कि अब सारे मजदूर उसे और भी ज्यादा आरोप-भरी आँखो से घूरने लगे होगे ! मगर, इसके बावजूद, रामप्यारी काम पर जाते समय बड़ी दूर तक हरभजन चौधरी के साथ अकेली-अकेली ही चलती रही ।

जो-कुछ कल दिन और रात-भर सोचती रही थी, उसका आकर्षण बहुत घट चुका था, इसीलिए रामप्यारी चाहती थी कि आशंका भी उतनी ही घट जाए । बोली—"चौधरी जी, छोटी चौधरानी से ठीक से पूछ लेना। ऐसा न हो, कि दुख माने । सौत तो चून की भी बुरी लगती है ।"

हरभजन चौधरी ने अपनी बघेरे की-सी मूँछे मठेरते हुए, पहले बिंदो चौधरानी को भद्दी-से-भद्दी गालियाँ दी और फिर बोला—"पूच्छे मेरी जूती । मैं तो वो मरद ना हूँ, चौधरानी, जो खटिया पर भी जोरू से पूछके ही बैठ पावें सुसरे। क्यो ? जब बड़ी के रहते बिंदी

को मैं ले आया था, तब तो उस सुसरी ने ना सोची, के बड़ी चौधरानी से चून की भी ना बर्दाश्त होगी ?"

रामप्यारी एक बार तो हरभजन की गालियों से सहम-सी उठी, मगर फिर उसे लगा कि शायद, बघेरों के पंजे मारने मे भी कुछ-न-कुछ आकर्षण जरूर होता होगा।

रामप्यारी बोली—"और. और यह बात भी पहले ही देख-लेना, चौधरी जी, कि जिस्म की तो मै हथिनी-सरीखी ही हूँ। कही..."

"अरी चौधरानी, बस भी करे।"—हरभजन चौधरी ने हँसते हुए रामप्यारी की कलाई को पकड कर इतनी जोर से दबा दिया कि एक क्षण को रामप्यारी ने अपने को ठीक वैसे ही झुकते हुए पाया, जैसे काली बिल्ली के जोर से चाट देने पर मुड जाती थी।

हरभजन चौधरी कहता जा रहा था—"मरद की जात शेर की जात बताई गयी है...होर तूँ जान कि औरत की छाती नापने मे बड़ी भले ही निकल आवे, दम तो बडा मरद के ही सीने मे होता है, चौधरानी !"

रामप्यारी ने देखा, कि जोर से हँसते हुए हरभजन के आगे के सारे दाँत दिखाई दे जाते है। नीचे और ऊपर के दो-दो दाँतो मे सोने के खोल चढाए हुए हैं, जिससे वे चारो दाँत और दाँतो से ज्यादा लम्बे दिखाई देते है। रामप्यारी को याद आया कि बिल्ली के भी कुछ दाँत दूसरे सारे दाँतो से लम्बे होते है। रामप्यारी ने अनुमान लगाया, कि बघेरो और शेरो के भी कुछ दाँत और सारे दाँतों से ज्यादा लम्बे होते होगे। रामप्यारी ने अनुभव किया, कि हरभजन चौधरी से वह कुछ सहमती चली जा रही है। रामप्यारी को लगा, कि आकर्षण अभी बहुत शेष है।

वह सोचने लगी, हरभजन चौधरी के घर बैठकर उसे और कुछ भले न मिले, मगर एक अनुशासन का बोध जरूर होगा। अपने

से किसी बड़ी सत्ता का बोध हमेशा एक ढाढस देता है। ईश्वरीय-सत्ता को लोग, सभवत, इसीलिए मानते है। रामप्यारी को लगता है, कि शायद, हरेक औरत पुरुष को अपने से बडी सत्ता के रूप मे पाना चाहती है। शायद, इसीलिए, हरेक औरत को पुरुप के रूप के प्रति आसक्ति की तुलना मे उसके पौरुष के प्रति आश्वस्ति का बोध ज्यादा आकर्षित करता है। रामप्यारी इस बार हँसते हुए बोली—"मगर चौधरी जी, बिरादरी के लोग चिढाने लगे, तो भी आप को बुरा नहीं लगेगा ? यो न कहने लगे, कि हथिनी कहाँ पाल ली ?"

"बके सुसरे बिरादरी वालो की तो क्या बोलूँ"—हरभजन चौधरी ने अगुलियो से होठो के किनारो को दोनो ओर फैलाते हुए उत्तर दिया—"ये-ए-ए मोढा चीरके इधर-से-उधर ना पहुँचा दूँ, तो कहना के मूँछे ना रखता था और फिर के, कहते हो तो सुसरे भतेरे कहते रहे, तेरा-मेरा क्या ले लेगे कद्दू ? तूँ तो यो समझ ले, चौधरानी, के कुत्ते तो ससुरे भूँकते ही रिया करें के ?.. होर हात्थी चलता ही जावे है के नही ?"

अपना कहना समाप्त करके, हरभजन चौधरी ने अपनी पूरी हथेली फैलाकर रामप्यारी की पीठ पर जड दी, तो रामप्यारी को अपनी पीठ ठीक वैंसे ही आर-पार तक हिलती हुई महसूस हुई, जैसे झील की सतह पर पत्थर मारने से पुरइन के पत्ते बड़ी देर तक काँपते रहते है। एक अजीब-सी झनझनाहट उसकी सारी देह मे ही नही, बल्कि मन की गहराइयो तक सनसनाने के बाद फिर रीढ की हड्डी मे आकर सिमट गई, जैसे 'स्विच-ऑन' करने पर तारों मे-दौड़ती हुई बिजली, 'स्विच-ऑफ' करते ही, फिर वापस लौट आती है। पीठ जब तक झनझनाती रही, रामप्यारी को ऐसा महसूस होता रहा, उसकी अपनी ही पीठ का मांस उघड़ आया है और कोई काला बघेरा उसे अपनी जीभें से चाटता ही चला जा रहा है।

रामप्यारी एकदम चौंक उठी। उसे लगा, कि शायद, यही चौक

सकने की स्थिति एक भविष्य है। भविष्य, जो एक ऐसी मनस्थिति में से जन्म लेता है, जिसमें पुरुष की हथेली के स्पर्श मे किसी काले बघेरे की जीभ का-सा आकर्षण अनुभव होने लगता है। ऐसा आकर्षण, जो किसी भी औरत की पीठ को पानी की सतह पर फैले हुए पुरइन के पत्तों की तरह अपनी ओर खींचने लगता है। ऐगा आकर्षण, जैसा अँधेरी रात मे जंगल मे लेटी हुई हथिनी को अपने समानांतर झाड़ी में छिपे बघेरे की आँखो मे दिखाई देता है। रामप्यारी ने आज जिंदगी मे पहली बार महसूस किया कि उसके अंदर की औरत जात एकाएक सयानी हो आयी है। रामप्यारी सोचने लगी, कि ऐसे ही वर्त्तमान में से गुजरते हुए, शायद, वह भविष्य आ सके, जिसमे वह सिर्फ दूसरों को ही हथिनी की तरह चलती न दिखाई दे, बल्कि अपने अंदर भी हथिनी ही की तरह चल सके। उस हथिनी की तरह, जो कीचड़ के तालाब मे से बाहर निकलते हुए भी ऐसी आत्म तृप्ति के साथ सूंड़-पूंछ हिलाती है, जैसे कमल के फूलो की गध लेकर लौट रही हो।

शाम को लौटते समय रामप्यारी रत्तो ताई के साथ ही लौटी। हरभजन चौधरी से उसने कह दिया था, कि उसकी झुग्गी मे तो वह आधी रात को तभी आयेगी, जब आस-पास के सो चुके होगे। रामप्यारी चाहती है, कि सवेरे वह मुँह धोने को बाहर निकले, तो हरभजन चौधरी की झुग्गी से ही बाहर निकलती दिखाई पड़े। हरभजन चौधरी ने कह दिया है, कि वह उस झुग्गी में चली आए, जिसके बाहर 'जंगली' फिल्म का 'पोस्टर' चिपकाया हुआ है।

आज दिन-भर भी रामप्यारी को अपने चारों और हँसी की लहरें उठती महसूस हुई थी, मगर वह ज्यादा विचलित नही हुई। कल रात-भर वह कल्पना करती रही थी, कि उसके हरभजन के घर बैठ जाने की खबर मजदूरो में फैल गयी, तो मजदूर मर्द-औरतो की आँखें और

जीभ ठीक वैसे ही हिलने लगेगी, जैसे हथिनी के सरोवर मे पाँव रखते ही मछलियो के झुण्डो मे हलचल मच जाती है।

अभी रामप्यारी के हरभजन चौधरी के घर बैठ जाने की बात औरो तक नही पहुँची है। अभी रामप्यारी ने सामाजिकता और पारिवारिकता की जिदगी के तालाब मे पाँव नही डाले है। अभी रामप्यारी कीचड-भरे तालाब से कमल-फूलो की गध लेकर नही लौटी है।

मगर रामप्यारी महसूस करती है।

हो सकता है, रामप्यारी यह न जानती हो, कि यो किसी भविष्य के आने से पहले ही उसे अपनी कल्पना मे झेल लेना—उसे महसूस कर लेना—अपने भविष्य को वर्त्तमान बना लेना है ? मगर रामप्यारी ऐसा करती है। रामप्यारी ने ऐसा किया है।

पोस्टर वाली झुग्गी की ओर रामप्यारी बार-बार नही देखना चाहती है। मगर लगता है, देखती चली जा रही है।

निजामुद्दीन से जंगपुरा रेलवे-क्रॉसिंग के पास की झुग्गी-बस्ती तक पैदल लौटते-लौटते, और रत्तो ताई की झुग्गी में बैठकर, अपने मानसिक-तनाव को संतुलित करने की कोशिश करते-करते, शाम रात मे बदल चुकी है। आज हरभजन के चचेरे भाई कालू चरन के यहाँ बैठक जमी हुई है और ढोलकियो पर थापें पडनी शुरू हो गयी है। रामप्यारी को लगने लगा है, कि कोई उसे असमंजस के अकेले टीले पर से निर्णय की सामाजिकता की झील मे खीचता चला जा रहा है।

बड़ी देर तक रत्तो ताई हरभजन के पुरुषार्थ के किस्से सुनाती रही, मगर तो भी रात उतनी नही बीती, जितनी बीतने पर रामप्यारी रत्तो ताई की झुग्गी से बाहर निकलना चाहती थी। हरभजन कई बार अपनी 'पोस्टर' वाली झुग्गी के पास टहलता हुआ और अपने दोनों बच्चो को जोर-जोर से चूमता दिखाई दे गया था।

रत्तो ताई ने बताया था, कि 'एक गुन भतीजे हरभजन में बड़ो ऊँचो है, रामप्यारी ! जितनी भी जनानियाँ इसने रक्खीं ना, एक-दो जितने भी बच्चे जिससे हुए, उन्हीं के घोरै छोड दिए, के बच्चों के ऊपर तो महतारी का ही हक पहला है । बस, एक अपनी व्याहता और मँझली के तीन बच्चे इसके धोरे रह गये है । बिचारी दुलारो चौधरानी तो परमेसुर के घर चली गयी के ? अब तूँ देख, यों कैसे चूमतो-चटकारते रहे है दुलारो के बाल-गोपालन को, जैसे खुद ही ब्याया हो । हे-हे-हे...'

रामप्यारी का पूछने को मन हुआ था, कि अगर रामप्यारी को भी उसने निकाल दिया, तो क्या होगा ?...और कही रामप्यारी के भी एक-दो बच्चे हो गये और उसने महतारी का हक छोड़ दिया, तो क्या होगा ? मगर फिर रामप्यारी को याद आ गया था, कि आज दोपहर को ही हरभजन चौधरी ने कह दिया था, कि 'देख चौधरानी ! मैं वो मर्द ना हूँ । जो मर्द ससुरा अपनी तरफ को आत्ती जनानी को न रोक्के, तो वो दूसरे की तरफ को जात्ती जनानी को क्यों घसीटे ?'

रामप्यारी ने हरभजन चौधरी को इस ओर बढते हुए देखा, तो और अन्दर को बैठ गयी, कि शायद, यही आ रहा हो । मगर हरभजन चौधरी सीधे कालूचरन की झुग्गी की तरफ को चला गया । रामप्यारी को सुनाई पड़ा, हरभजन चौधरी कह रहा था—'क्यों, काल्या ? अभी तक भी ना होलिया क्या भौजाई के लल्ला ? अब सारी रात ढोलके-दमामे ही बजवाते रहेगा के ?'

रामप्यारी को याद आया, कि कल यही हरभजन चौधरी थकान के मारे नाच-गाने से उकताते हुए लोगों को आग्रह कर-कर के रोक रहा था, कि 'अरे, अभी तो ससुरी आधी रात भी ना बीती ।' तो क्या कल हरभजन रात-भर इसलिए गाने-नाचने की महफिल बिठाए रहना चाहता था, कि रामप्यारी सारी रात जागती और सुनती रहे ? हो

सकता है, आज हरभजन चौधरी कालूचरन को सिर्फ़ इसीलिए टोक रहा हो, कि गाना सुनने वालों का आना-जाना टूटे, तो रामप्यारी जल्दी ही उसके यहाँ चली आये ?

रामप्यारी सोचने लगी, अपने अस्तित्व की सार्थकता के इस बोध से वह फिर अपने को अजनबी स्थिति में पाती चली जा रही है। कल भी वह चाहने लग गयी थी कि हरभजन चौधरी खुद आये और बुला ले जाये, तो वह चली जाये। आज भी रामप्यारी ऐसा ही चाह रही है। कल हरभजन चौधरी खुद नहीं आया था। हो सकता है, आज भी हरभजन चौधरी खुद नहीं आये।

कालूचरन की बैठक में हरभजन जोर-जोर से खाँसते-खँखारते हुए खुद भी कवित्त गाने लग गया है—ऐं-ऐं-ऐं...पिया खड़ा बाँसरी बजावे... हो-हो हरे रामा !...रैना बीती जाय छबीली, कब निकले घर सें-ऐं-ऐं-ऐं-हेहो हरे रामा !

रामप्यारी अपने कद्दावर जिस्म को किसी तालाब में डूबता हुआ-सा महसूस करती है, मगर बार-बार कितनी ही आशंकायें आँखों में मँडराने लगती है। अँधेरे में बघेरे की सिर्फ आँखें ही दिखाई देती है, पंजे नही, दाढ नहीं—और बघेरे की आँखों में बहुत जबर्दस्त आकर्षण होता है।

रामप्यारी सोचने लगती है, किसी भी औरत के हरभजन चौधरी-जैसे दबंग और लड़ैत पुरुष के साथ जुड़ने की उद्दाम तृष्णा के क्षण ठीक उसी अँधेरे के क्षण है, जिसमें बघेरे की सिर्फ आँखें दिखाई देती है। दहाड़ते समय बघेरे की जीभ कैसी हो आती होगी ? डॉक्टर शर्मा की काली बिल्ली की जैसी ? रामप्यारी को आज याद आ रहा है, कि डॉक्टर शर्मा के यहाँ नौकरी करते हुए आखिर उसने कभी भी यह जानने की जरूरत अनुभव क्यों नहीं की, कि जिसके लिए वह

अपनी पीठ पर मांस घिस दिया करती थी, वह वास्तव में बिल्ली ही थी, या बिलाव था ?

तस्वीर वाली झुग्गी के बाहर चूना ज्यादा तेज लगा हुआ है। रामप्यारी ठीक उसी के पास पहुँच गयी, तो उसने स्वय ही अनुमान लगा लिया, कि शायद, हरभजन चौधरी इसमे अकेला सोया होगा और बिंदो चौधरानी बच्चों के साथ दूसरी झुग्गी में। और रामप्यारी नें महसूस किया कि वह हरभजन चौधरी की झुग्गी के बाहर ठीक वैसी ही मनस्थिति मे खड़ी है, जैसी मनस्थिति उस बिल्ली की हो सकती है, जो गृहस्वामिनी की दृष्टि बचा कर, दूध की हंडिया मे मुँह डालने की प्रतीक्षा मे पंजे दबाए खड़ी हो। रामप्यारी को लगा कि उसके दोनों पाँवों के नाखून तेजी से अन्दर की तरफ को सिमटते जा रहे है। रामप्यारी सोचने लगी, शायद, हरभजन चौधरी की झुग्गी के अन्दर चले जाने के बाद वह अपने तमाम नाखूनो को इतनी ही तेजी से बाहर को निकलते हुए भी महसूस करेगी। रामप्यारी ने देख रखा है, कि डॉक्टर शर्मा की काली बिल्ली—या काला बिलाव—किन क्षणो में अपने पंजो के नाखून समेटती और किन क्षणो में बाहर निकालती थी।

रामप्यारी यंह भी महसूस कर रही है, कि इस समय उसके अन्दर की औरत जात ठीक काली बिल्ली की तरह ही नाखून वाहर निकाले, उसकी पसलियों को चीरकर, बाहर निकल आने की कोशिश कर रही है।

रामप्यारी सोचने लगी, कि उसकी इस मनस्थिति ने उसे जैसे नाखून समेट कर खड़ा रखा है, उसी की वजह से हरभजन चौधरी उसके वहाँ पहुँच जाने की बात नहीं जान सका है।

हरभजन चौधरी ने दरवाजे का तख्ता अन्दर को खींच लिया—"क्यों अन्दर आते शरम लगे है ?"

रामप्यारी एकदम चौंक उठी।

बघेरे की आँखें अँधेरी रात में और ज्यादा साफ-साफ देखती हैं।

रामप्यारी लौट पड़ने को हुई। उसने अपने पाँवों को पीछे हटाने की कोशिश की। उसने बगल की झुग्गी में बिंदो चौधरानी को करवट बदलते और छोटे बच्चों को चिकोटियाँ काटते हुए-सा महसूस किया। उसने बिंदो चौधरानी को थूक गटकता-सा अनुभव किया, कि 'क्यों, आली छिनाल ?'

उसने अपने पाँवों को तेजी से रत्तो ताई की झुग्गी की तरफ खींच लेना चाहा। रामप्यारी को याद आया, कि यह तो वह कल रात ही सोच चुकी थी, कि हरभजन चौधरी की झुग्गी के अन्दर वह जायेगी, तो बिंदो चौधरानी क्या महसूस करेगी और क्या कहेगी।

बिंदो चौधरानी ने कुछ भी नही कहा है। बिंदो चौधरानी ने, शायद, वैसा कुछ महसूस भी नहीं किया है। रामप्यारी ने महसूस किया है। रामप्यारी अपने पाँव पीछे हटा लेना चाहती है।

"कही तूं कँवारी ही तो ना है अब लों ?"—हरभजन चौधरी ने रामप्यारी का हाथ पकड़ लिया—'आखिर इस उमर मे ऐसो भी शरम क्यों है ?'

रामप्यारी को लगा, कि उसके पाँवों के नाखून तेजी से बाहर को निकल आये है और उसके पाँवों की अँगुलियों को हरभजन चौधरी की तरफ को खींच रही है। रामप्यारी को लगा, कि बघेरे के पंजों में भी बहुत जबर्दस्त आकर्षण होता होगा।

रामप्यारी शर्म की मारी झुग्गी के कोने से सटकर बैठ गयी।

●

६

आज सबेरे रामप्यारी बिंदो चौधरानी से काफी पहले ही उठ गयी थी।

अभी उजाला इतना नही फैला था, कि रामप्यारी बाहर निकलते ही ठीक उसी तरह सहम उठती, जिस तरह सहम उठने की कल्पना करते हुए उसे—न चाहने के बावजूद—आत्म-ग्लानि का बोध होता है। अभी झुग्गियों के दरवाजों के आगे जिंदगी ज्यादा नही फैली थी।

सिमटी हुई जिंदगी में रामप्यारी को सुविधा होती है। सिमटे हुए नाखूनों से चलते हुए पाँवों की अँगुलियों में खून बहुत तेजी से सनसनाता है। जैसे नाली में पड़े हुए कागजों और घास-फूस से नाली में धीमे-धीमे बहता आ रहा पानी पहले ठहरता चला जाता है और फिर सनसनाने लग जाता है, और फिर तेजी से कागज और घास-फूस के बाँध को तोड़ कर बह जाता है। रामप्यारी सोच रही है। जिंदगी में—समतल जमीन पर फैलते हुए बरसाती जल की तरह चारों तरफ को फैलती हुई जिंदगी में—जितनी अधिक अतृप्तियाँ जमा होती जाती है,

खून नसो में ठीक वैसे ही पीछे को हटता और ठहरता चला जाता है, जैसे नाली में रुका हुआ पानी पीछे को हटता और ठहरता चला जाता है। पाँवों की अँगुलियों के आगे—यानी भविष्य की ओर बढ़ने की कल्पना के आगे—अतृप्तियों और अनुपलब्धियों का छोटा-सा बाँध बँधा पड़ा है, इस बोध-मात्र से खून नसो मे और ज्यादा तेजी से सन-सनाता है।

रामप्यारी के पाँवों के आगे—रामप्यारी के पीछे लौटते और ठहरते हुए खून के आगे—बँधा हुआ बाँध टूट कर छितरा चुका है। रामप्यारी की समतल वर्त्तमान में चारों तरफ को फैलती हुई जिंदगी, भविष्य की सँकरी घाटी में सिमट कर, वेगवती हो गयी है। जिंदगी का ठहराव हो, या नदी का ठहराव, पहले पीछे की लौटता है, फिर सनसनाता है और फिर आगे के बाँध को बहा ले जाता है। व्यक्ति अपने को बहता हुआ महसूस करता है।

रामप्यारी ऐसा महसूस करती है। तेज बहाव में पड़ी हुई हर चीज अपने को बह जाने से पहले सिमटता हुआ-सा महसूस करती है।

तीन वर्ष का सुक्खू अभी भी रो रहा है। रामप्यारी उसके ही रोने की आवाज से जागी थी। जागी तो बिंदो चौधरानी भी होगी ? उठी नहीं है। रामप्यारी ने रात-भर उसे तर्जनी से अँगूठा मिलाकर, सुक्खू बेलिया और सात-आठ महीनो की पत्तो को चिकोटियाँ काटते हुए देखा है। यथार्थ के अँधेरे में रामप्यारी को—शायद हरेक औरत को—अपनी कल्पना बघेरे की आँखों की तरह और ज्यादा साफ-साफ दिखाई देती है।

रामप्यारी के लिए हरभजन चौधरी की झुग्गी बिल्कुल नयी है, मगर रामप्यारी को पानी का कनिस्तर और लोटा ढूंढने में कोई

असुविधा नही हुई थी। रामप्यारी जंगल जाकर, वापस लौट चुकी थी। सिगड़ी में से कोयला टटोलने के बाद, रामप्यारी झुग्गी के पिछ-वाड़े चली आयी थी, जहाँ से नाली निकली हुई है। नाली के किनारे रखे हुए चौड़े तख्ते को देख कर, रामप्यारी ने अनुमान लगा लिया, कि यहाँ कपड़े धोये जाते होगे।

कोयले से दाँतों को घिसते हुए, रामप्यारी पूरी बस्ती को भी आँखों से टटोलती रही। कई-एक झुग्गियो के आगे सोये हुए कुत्ते अब इधर-उधर फैलने लग गये थे। जंगल की ओर जाते लोगों को देखकर, रामप्यारी नीचे बैठ गयी। आस-पास कही बड़े पेड नही है। दाँत घिसते-घिसते ही रामप्यारी ने मोटी सीक वाला झाड़ू भी देख लिया। पास ही चक्की के पाट भी खड़े करके रखे हुए है। दीवार पर उपले थोपे हुए है। कंडों को देखते ही निजामुद्दीन का बस-स्टॉप याद आने लगता है।

हँसने के लिए, रामप्यारी ने मुँह में पानी भर लिया और जोर-जोर से कई कुल्ले किए। रामप्यारी को पता है, कि कोयले घिसने के बाद, कुल्ला करते ही, उसके दाँत एकदम सफेद-सफेद दिखाई देने लगते है। रामप्यारी हँस पड़ी। जोर से न खिलखिला बैठे, इस भय से धोती का छोर मुँह में ठूँसने लगी, तो याद आया कि यह धोती श्रीमती कपूर की दी हुई है। उसके डोरों को कई बार उसने कन-खूजरों की तरह मोड़-मोड़ कर कानों में डाला है। जैसे कोयले से घिसने पर दाँत सफेद हो आते है—रामप्यारी महसूस करती है—कभी-कभी ऐसा भी होता है, कि जिंदगी में व्यक्ति जिस तृष्णाओं को पाप-जन्य या कुत्सामूलक मानता है—और उनके सनसनाते हुए प्रवाह को आत्म-निषेध के द्वारा पीछे को हटाता और ठहराता रहता है—वो स्याह पड़ती चली जाती है।

रामप्यारी महसूस कर रही है कि अपनी स्याह पड़ी हुई तृष्णाओं को भोग लेने के बाद मन बहुत साफ हो आता है।

इस बार रामप्यारी बिंदो चौधरानी वाली झुग्गी के अंदर चली आयी। पत्तो को गोद में उठा लिया। बिंदो चौधरानी ने मुँह पर धोती पलटा ली। रामप्यारी को थोड़ी-सी हँसी आ गयी। बेलिया और सुक्खू को कम्बल ठीक से उढ़ा देने के बाद, रामप्यारी ने पत्तो के नीचे की गीली कथरी को निकाल लिया। पत्तो को चुप कराते हुए ही, पिछवाड़े जाकर, कथरी को तार पर लटका आयी। रात के बरतन ज्यों-के-त्यो पड़े थे। कल हरभजन मुर्गा उठा लाया था। कह रह था कि आज बिंदो चौधरानी ने पूरा पौवा चढ़ा लिया है। रामप्यारी का मन हुआ, कि बिदो चौधरानी के मुँह पर से धोती का पल्ला उठा ले। चाय तो वही बनायेगी। आज सर्दी उतनी नही थी। पत्तो को गोद मे दबाए-दबाए ही, रामप्यारी ने सारे बरतन घिस डाले। लौटी, तो अभी भी बिंदो चौधरानी नही उठी थी। बगल की झुग्गी से हर-भजन का बोलना सुनाई दे रहा था—"क्यो, आज चा-वा कुछ ना बनी के ? क्यो, ताई, वो कहा जो है, के ससुरी ज्यादा बिल्लियों वाली हवेली मे चूहे ज्यादा ना मरते, सो मेरी जानो, गलत थोड़े ना कहा है।"

रामप्यारी धीरे से बोल गयी—"बना रही हूँ..."

फिर शर्मा गयी। रत्तो ताई भी क्या बोलेगी कि कल रात की रखैल और सवेरे ही मुँह का जाला उतर गया है।

हरभजन चौधरी कह रहा था—"बस्स, दिखने की ही भारी है के, ताई ! बोले यों, के जनी ससुराल का दरवज्जा कदी ना देखा होवे। शरमावे यो, के जनी...ताई, तमाखू भरवालूँ, के सिगरट पीवेगी ?"

रामप्यारी सिगड़ी जलाने बाहर निकल गयी।

चाय पीकर, रत्तो ताई चली गयी, तो सारी झुग्गी बस्ती में सिर्फ़

धूप ही नही, बल्कि यह खबर भी फैलती चली गयी, कि रत्तो ताई के यहाँ ठहरी हुई मोटी परदेसिन हरभजन चौधरी के बैठ गयी है। एक-एक करके, चिलम हाथ मे लिए-लिए ही कई मर्द उठकर हरभजन चौधरी की ओर आते चले गये। कई औरतें भी आ गयी। कुछ ने बिंदो चौधरानी को घेर लिया और कुछ ने रामप्यारी को। रामप्यारी पहले तो एकदम विचलित-सी हो आयी। उसने अपने को ऐसी मन-स्थिति मे पाया, जिसमें व्यक्ति अपने आस-पास जुड़ते हुए लोगों के चेहरो को देखे बिना ही उन तमाम प्रश्नों को खुद ही अपने अंदर उत्पन्न कर लेता है, जो लोगों के द्वारा बाद में पूछे जाते है।

"पैंले किसके बैठी हुई थी यो ? कुछ नामा-वामा भी चुकता करना पड़ा बेलिया के बाबू को ? पैंली ब्याहत के छोरे कितने छोड़ आयी ? सुभाव की कैसी है ? हक मारने वाली तो ना दिखती ?'—बिंदो चौधरानी के कानों में जितने भी प्रश्न फुसफुसाए जा रहे है, रामप्यारी उन्हे सुन नहीं पा रही है, लेकिन महसूस कर रही है।

बगल की झुग्गी मे हरभजन चौधरी किसी से कह रहा है—"बस, यो जानो कि हात्थी पालने का शौख पूरा कर रिया हूँ।"

कोई कह रहा है—"बस, है भी थारे ही बस का रोग। मगर इत्ती-सी खूबी जरूर है कि हरियाणे की भैंस जब भी ब्यावे, सारा कुनबा अघा जावे, और चा-पानी को भी बच जावे। क्यों झूट्ठ बोलूँ के ?"

ठहाको को गूँजते सुन रही है रामप्यारी।

लग रहा है, चारो तरफ से फिर घिरी हुई है। बस्ती के ऐसे लोगो के बीच घिरी हुई है, जिनके बीच में अपना अलग अस्तित्व बनाए रखना संभव नही है। रामप्यारी अपने को अभ्यस्त बनाने की जरूरत और ज्यादा तेजी से महसूस करती जा रही है। हरभजन वाली झुग्गी मे न-जाने कितनी चिलमे एक साथ बज रही है। न-जाने कितने लोग

एक साथ बोल रहे हैं।...और रामप्यारी महसूस कर रही है कि जिंदगी मे ऐसे क्षणों को प्रत्येक मनुष्य खोजता रहता है, जिनमे वह औरों के जीवन मे आये हुए बदलाव को अपने लिए प्रयोग में लाने की चेष्टायें कर सके। दूसरे के जीवन मे आये हुए बदलाव मे अगर व्यक्ति खुद हिस्सा न बँटा सके, तो फिर उसे बर्दाश्त नही कर सकता। रामप्यारी महसूस करती है कि ये जो बहुतेरे मर्द हरभजन चौधरी की झुग्गी में बैठे हँसी-मजाक कर रहे है, अगर इनमें हरभजन की जिंदगी मे आये हुए इस बदलाव को अपने लिए भी प्रयोग में ले आने की सामर्थ्य नही होती, तो फिर न-जाने कितने इनमे ऐसे होते, जो रामप्यारी की इस चुनौती को बर्दाश्त नहीं कर पाते कि उन्ही के बीच मे एक ऐसा मर्द भी है, जो उसे अपना सकता है। उसे, जिसके लिए कल दोपहर को ही इसी बस्ती के नेकराम ने कहा था कि 'यह तो सिर्फ़ साझे की चिलम का काम दे सकेगी।'

हरभजन चौधरी वाली झुग्गी में कोई कह रहा है—"क्यो भई लम्बरदार, अब कुछ खाणे-पीणे की दावत भी करोगे, के यो ही कोरी-ठाली बधाई लोगे?" हरभजन उल्लासपूर्वक आवाज देता है—"बड़ी चौधरानी, जरा चा-पाणी तो पिला लोगों को ? आखिर शाद्दी अकेली मेरी ही ना हुई, तेरी भी तो हुई है के ?"

नेकराम जैसे अपने-आप से ही, मगर जोर से कह रहा है—"कहीं छोटी लम्बरदारनी खालिस दूध की चा ना बना देवे !"

हरभजन की झुग्गी में निरंतर ठहाके गूँज रहे है और रामप्यारी को लगता है कि कोयले से दाँत घिसने के बाद कुल्ले करते ही दाँत और ज्यादा साफ हो आते है। रामप्यारी को लग रहा है कि हरभजन के दोस्तों का पूरा समुदाय उसे ठीक हरभजन की तरह ही सम्बोधित करने के प्रयत्न कर रहा है। रामप्यारी थोड़ा-सा सहम भी उठी कि

कहीं कोई पुरुष ऐसा मजाक न कर बैठे, जिसे वह खुद या हरभजन बर्दाश्त न कर पाये।

कई मजदूर औरतें बीच-बीच मे गाने भी लग जाती थी। रत्तो ताई बिदो चौधरानी से कह रही थी—"एक गुड की भेली भी लाके ना रक्खी हरभजना ने के ?"

बिंदो चौधरानी फुसफुसा उटी—"भेली नही, तो भेला तो रख दिया है ला के हमारे लम्बरदार ने, ताई ? देखती ना हो, के बगल की कोठरी में कितने चीटे इक्ट्ठे हो गये हैं ?"

रामप्यारी हरेक मजाक को सुन नही पाती है, मगर अनुभव कर रही है। उसे आज सोलह-सत्रह वर्ष पुराना वह दिन याद आ रहा है, जब छोटे मास्टर सतपालसिंह के साथ उसकी भाँवर फिरी थी। वर-पक्ष के किसी पुरुष ने मजाक कर दी थी—"मास्टर साहब की तो बहू की बहू, भौजी की भौजी !"

बिरखा चौधरी की बड़ी बहू हँस पडी थी—"आपके इलाके में भौजी रखने का रिवाज चला हुआ दिखता है, ठाकुर साहिब ?"

रामप्यारी की आँखें धीरे-धीरे गीली होती चली आई। नही, आज के दिन उसके मन में वह अछूता सुख कहीं नहीं है। आज तो अपना सारा रक्त बाढ़ आयी नदी के गँदले पानी की तरह सनसनाता महसूस होता है, मगर तब उद्गम से फूटते स्फटिक स्वच्छ जल की तरह छल-छलाता हुआ लगता था। रामप्यारी हर क्षण दबाये ही रहना चाहती है, मगर यह आत्म-बोध पानी में डुबोये जा रहे काठ की तरह ऊपर को उछल-उछल आता है कि यह जो सारी भीड़ यहाँ जुड़ी हुई है, इसके सामने सबसे पहली बात यही है, कि कल रात रामप्यारी खुद ही हरभजन चौधरी की झुग्गी में चली आयी थी।

बेलिया की नानी फुसफुसा रही है कि 'चार दिन भी ना हुए बस्ती में पहुँचे, गुलेनार लम्बरदारनी बनके तैयार भी होली।'

बिंदो चौधरानी कह रही है—"वो तो हमारा लम्बरदार ही पेले मिल गया, काकी ! ना मिलता, तो जमादरनी बनते भी क्या देर लगती है ऐसी मस्तानियों को ?"

रामप्यारी को लगा कि उसे अपने सिर को जोर-जोर से हिलाते रहना चाहिए, ताकि कानों में प्रविष्ट होते हुए कनखजूरे ज्यादा नीचे तक न उतर पाएँ। उसे लगा कि बिंदो चौधरानी की सौत बन जाने के बाद की जिन प्रतिक्रियाओ की उसने कल्पना कर रखी थी, वो यथार्थ बनती जा रही हैं।...मगर सौतिया-संबंध में भी तो एक आकर्षण होता है। उसके लिए भी तो यह सोचना मात्र भी एक आकर्षण को भोगना है कि कल हरभजन वाली झुग्गी में वह सोई रही थी और बिंदो, शायद, रात-भर करवटें बदलती और बच्चो को चिकोटियाँ काटती रही थी ! जैसा पहले कभी नहीं सोचा, वैसा सोच पाने की मनस्थिति मे भी तो जिंदगी बदलती हुई-सी लगती है ? रामप्यारी को ऐसा लगता है। रामप्यारी हँस पड़ती है। रामप्यारी नहीं चाहती थी, मगर कह बैठी—"और तुम क्या बिना मस्ताये ही चली आई थी, नम्बरदारनी ? अपने मालिक की हथेली पर नोट गिन गिन के ?"

रामप्यारी ने तो धीरे से मजाक मे ही कहा था, मगर बिंदो चौधरानी ने चाय का पतीला जमीन पर रख कर, रत्तो ताई का झोंटा पकड़, अपनी ओर घुमा लिया उसे—"अरे, हाय, हाय, हाय ! देख ले ताई, एक दिन भी ना हुआ, मगर मेरे पुराने किस्से भी बखानने लग गयी तेरी गुलेनार ? अरी, ओ बम्पू ? रख आई गिन-गिन के लोट, तो कोई तेरी कमाई के तो ना थे ?...होर कोई तेरी जनी चुरड़ियो जैसी तो ना घुस आयी थी रात के अँधेरे में ? अब शरम की बात तनें के बोलूँ, ताई, रात को मस्तानी यों दरवज्जे के पास चक्कर काटती फिरती थी, जैसे चुरड़ी बिल्ली गोश्त के पतीले के चक्कर काटती है।"

बगल की झुग्गी से नेकराम ने ठहाका लगाया—"बड़ी लम्बरदारनी !

मेरी बात तो यों मानो, के जोरू-मरद तो हमेशा ही एक-दूसरे के गोश्त के चक्कर यों काटें, जैसे बिल्ली होर बिलावा। थारे चक्कर कुछ कम काटे क्या हमारे लम्बरदार ने ?"

हरभजन चिलम हाथ में लिए ही बाहर निकल आया—"ए, सुबेरे-सुबेरे भंगी-चमारों की बस्ती का जैसा रोला क्या मचा दिया ? दूँगा दोनों के चूतड़ों में सोटे, तो ठिकाने पे आ जाएगी जबान।...क्यों, ताई, इस अपनी लाई हुई गुलेनार से जरा बोल के ये उन नामर्दों का घर ना है, जिन्हें छोड़ आई जूती का तला दिखा के। इसको बोल के मेरे घर तो यों ही रहना होगा, ज्यों महावत के नीचे हथिनी सुसरी रहे है।"

बिंदो चौधरानी ने चाय का पतीला उठा कर, फिर चूल्हे पर चढ़ा दिया। रत्तो ताई हरभजन चौधरी को समझाने बाहर निकल गयी, कि 'अरे, गुस्से क्यों होवे है, बेट्टे ? दोनों को आपस में हँसी-ठट्ठा भी ना करने देगा तूं ?'

रामप्यारी कोने में पत्तो को गोद में लिए बैठी रह गयी। जिंदगी के भविष्य का यह पहला दिन और इस पहले-पहले दिन का यह छोटा-सा क्षण—रामप्यारी को लगा, कि उसकी देह की तमाम नसें कनखजूरों की तरह मुड़ती चली जा रही है। रामप्यारी सोचने लगी कि जब हथिनी की सूँड़ में छोटी-सी चींटी घुस जाती होगी, तो तब क्या वह भी ऐसा ही महसूस करती होगी ? जब हथिनी के माथे पर महावत अंकुश गड़ाता होगा, तब क्या किसी एक ऐसे ही क्षण की रचना होती होगी ? एक अजनबी क्षण की ?

रामप्यारी सोचने लगी, ऐसा होता होगा। रामप्यारी उठी और चाय के जूठे जस्ते के गिलास धोने पिछवाड़े चली गयी।

●

७

धीरे-धीरे सारे लोग छँट गए थे।

रत्तो ताई जाते-जाते कह गई—"रामप्यारी, उदास क्यों बैठी है बहू ? मरे, ऊँचा-नीचा बोलना, लड़ना-झगड़ना ही ना हो, तो सुसरी घर-गिरस्ती किस काम की ? होर, बेटे हरभजन की तो तूँ यो जान के अक्खड़ मर्दानी जबान है ! छोरा यों बघेरे की जनी मूँछे उमेठता गरजे, तो औरत जात के कानों के परदे उधाड़ के रख देवे जबांमरद ! बस, तूं तो यों समझ ले, के जिस जनानी ने ऐसा जबरा मरद पा लिया, उसने कालका माई का बरदान पा लिया। भतीजे हरचरन को तूँ यों समझ, के साक्षात् शंकर जी का बीरभदर बीर ! नजर तो तूँ जान, भतेरों की लगी हुई थी तेरे जोबन पर सुसरी, मगर हिम्मत ना पड़ी किसी और मरदुवे की !"

रामप्यारी ने उस समय छोटी पत्तो को अपनी गोद में सँभाल रखा था। जाते-जाते रत्तो ताई बीड़ी का धुआँ उसकी कनपटी के पास तुर्रा गई—"बरस-भर में ही अपने बालक को लिए बैठी रहेगी यों ही..."

रामप्यारी को बीड़ी के धुएँ का तुर्रा कनखजूरे की तरह कनपटी पर से कान के अन्दर को सरकता हुआ-सा महसूस हुआ और हथेली से पोछते हुए, वह हँस पडी। स्वयंसिद्ध परित्यक्ता की सी मनस्थितियो और अनुभूतियो मे जीने के इतने लम्बे अतीत और वर्त्तमान के बाद, किसी ऐसे आने वाले भविष्य की बात सुनते ही रामप्यारी हमेशा पहले चौकती है, फिर हँस पड़ती है।

शायद, रत्तो ताई के साथ-साथ थोड़ा आगे तक हो आने वाली बिंदो चौधरानी यो फुसफुसाकर पीछे लौट रही है कि 'देख लिया, ताई ? ब्याने की बात पर भी ना शरमाती, बम्पू !'

बिंदो चौधरानी के व्यंग की कल्पना करते हुए भी रामप्यारी थोड़ा-सा चौक उठती है कि उसके संदिग्ध भविष्य को लेकर भी इतने निर्णीत स्वर मे उस पर व्यंग किया जा सकता है ? जो कुछ उसके जीवन मे आया हुआ नही होता है, सिर्फ आ सकने का आभास-मात्र दे सकने की स्थिति मे होता है, उसको लेकर ही औरों के लिए वैसी मानसिक प्रतिक्रियाओ मे गुजर लेना संभव हो जाता है, जैसी प्रतिक्रियाये मे रामप्यारी अपने भविष्य के प्रति खुद पैदा करती चली जाती है ?

रामप्यारी चूँकि खुद अनागत को कल्पना मे भोग करके उसकी प्रतिक्रियाओ से गुजरने की अभ्यस्त हो गई है, इसीलिए उसे औरो का भी उन तमाम प्रतिक्रियाओ से गुजर जाने का बोध अक्सर चौका ही देता है।

रामप्यारी इसीलिए अक्सर एकाएक शर्म भी महसूस नही करती है।

दूसरों को जिन मानसिक-स्थितियों से गुजारने का पूर्व-निश्चय रामप्यारी के मस्तिष्क में होता है, उन मानसिक-स्थितियों की पूर्व-कल्पना से रामप्यारी खुद ही दूसरों को उन तमाम प्रतिक्रियाओं से गुजरता हुआ महसूस कर लेती है, जिनसे यथार्थ में गुजरते हुए देखने

पर अपने अस्तित्व की सार्थकता का बोध—औरों के लिए अपने और अपने लिए औरों के अजनबी होने का बोध—अनुभव किया जा सकता है।

इसी लिए रामप्यारी पहले चौकती है।

दूसरों को अपने व्यवहार से चौका देना या खुद दूसरों के व्यवहार से चौक उठना, एक अजनबीपन की स्थिति को—यानी एक नये वातावरण या एक नये भविष्य-क्षण को—उत्पन्न कर सकता है। रामप्यारी ऐसी स्थिति को उत्पन्न करती रहना चाहती है। रामप्यारी ऐसी स्थिति को उत्पन्न कर भी लेती है। मगर ऐसी प्रत्येक स्थिति अक्सर पहले ही उसके अंदर-ही-अंदर उत्पन्न होकर, वही पुरानी भी पड़ लेती है, इसी लिए रामप्यारी अपनी इस असमर्थता पर खुद ही चौक उठती है।

रामप्यारी पिछले दो-तीन दिनो में लगातार ऐसी बहुत-सी बातो की कल्पना कर चुकी है, जिनसे बिंदो चौधरानी बुरी तरह चौकती और फिर बदले में, शायद, खुद भी ऐसी स्थितियाँ पैदा करती, जिनसे रामप्यारी को चौक उठना पडता—मगर रामप्यारी ऐसा कर नही पाती है।

रामप्यारी इसीलिए पहले शर्म महसूस नही कर पाती, बल्कि सिर्फ थोड़ा-सा चौक उठती है। और, शायद, किसी भी चीज का अपनी तात्कालिकता में न हो पाना, अपनी उपयोगिता को खो बैठना है। रामप्यारी रत्तो ताई की बात सुन कर, एकदम शर्म में डूब जाती और धोती का पल्ला मुँह पर कर लेती, तो बिंदो चौधरानी जरूर चौंकती! बिंदो चौधरानी ने रामप्यारी के बारे में उसके 'बेशर्म बम्पू' होने का जो पूर्व ग्रह अपने अंदर स्थापित कर रखा है, वह रामप्यारी को नयी-नवेली दुलहन की तरह शर्म में डूबते देखकर, एकाएक खंडित हो जाता। और यों पहले बिंदो चौधरानी चौंकती और फिर तब कहीं रामप्यारी चौंकती, तो औरों के लिए अपने तथा अपने लिए औरो के अजनबी

हो ने—यानी खुद अपने-आप से अपने अंदर की मानसिकता से पूर्णतः परिचित होने—की स्थिति आ सकती थी ।

ऐसी स्थिति आ सकती थी, जो रामप्यारी का भविष्य बन सकती थी । सीधे-सीधे इसे यों भी कहा जा सकता है, कि रामप्यारी का भविष्य किन्ही बाहरी स्थूल परिवर्त्तनो पर निर्भर न होकर, शायद, सिर्फ इस बात पर निर्भर है, कि रामप्यारी अपनी आज तक की सारी अनिर्णीत मानसिकताओ से उबर कर, एक बिल्कुल नयी मनस्थिति पा सकती है, या नही ।

वास्तव मे, रामप्यारी उस मनस्थिति को पाना चाहती है, जहाँ उसको लेकर दूसरे सोचें, मगर वह खुद अविचलित रह सके । जैसा रामप्यारी ने कल रात सोचा था, ठीक वैसा ही हो पाता, तो बिंदो चौधरानी एकदम चौक उठती—यानी जिस रामप्यारी को वह अभी सिर्फ हास्यास्पद समझकर, व्यंग करती है, उसे ही वह एक चुनौती के रूप मे सामने खड़ी पाती—और तब रामप्यारी के सामने यह परख सकने का अवसर आ पाता, कि वह ऐसी प्रतीक्षित मनस्थिति को पा चुकी है, या नही ।

रामप्यारी का वास्तव में बच्चा हो जाता और रामप्यारी उसे दूध पिलाती झुग्गी के दरवाजे पर बैठी रहती और बगल की झुग्गी से बाहर को निकलता हरभजन रामप्यारी की तरक को देखता हँसते हुए, तो रामप्यारी एकदम शरमाकर, धोती के पल्लू से सिर्फ अपने मुँह को ही नही, बल्कि दूध पीते बच्चे को भी ढाँक लेती...और उसे यों शर्माते हुए देख कर, उसे नारीत्व के सुख को भोगते देख कर, सामने झाड़ू लगाती या बाल सँवारती बिंदो चौधरानी पहले बुरी तरह चौकती. .फिर बिंदो चौधरानी बुरी तरह कुढ़ती...और तब कोई बहुत तीखा व्यंग बिंदो चौधरानी के होंठों से टूटी हुए शीशी से बहते हुए तेजाब की तरह बाहर को फैलता चला जाता ।

और तब रामप्यारी यह तय कर पाती, कि उस जलन को वह चुपचाप बर्दाश्त कर पाई है, या नहीं। आज सुबह ही अपनी घर-गिरस्थी का—अपने भविष्य का—जो उत्कट स्वरूप रामप्यारी की आँखों ने देख लिया है, उसमें बिना तीखी जलन को बर्दाश्त करने की क्षमता के ही बहुत लम्बे अरसे तक नही जिया जा सकता। जिया, शायद, जा सकता है, मगर वैसे नहीं, जैसे रामप्यारी जीना चाहती है।

रामप्यारी अपने भविष्य के बोझ से दबकर नहीं, बल्कि उसे अपने कंधो पर उठाकर झेलना चाहती है।

रामप्यारी को अब कही जाकर शर्म महसूस हुई, कि वह भी कैसी विचित्र औरत है।

रामप्यारी ने एकदम अचकचाकर, पत्तो के अपने बाये स्तन के ऊपर टिके हुए सिर को सामने की ओर अलग हटा दिया। बिंदो चौधरानी रोटियाँ बनाने में लगी हुई थी। रामप्यारी सोचने लगी, अगर उसे यो एकाएक शर्म महसूस करते हुए, पत्तो को अपनी छाती पर से हटाते हुए बिंदो चौधरानी देख लेती, तो कही ऐसा तो नही कह बैठती, कि—'इस बम्पू की तो छाती बिना बालक हुए ही यो दिखाई पड़ती है, जैसे दो जुड़वाँ बालको के सिर आँचल में छिपाकर दूध पिला रही हो!'

रामप्यारी शरमाने की जगह, हँस पड़ी। अपनी स्थूलता को जब वह खुद ही सह नहीं पाती है, दूसरे भला कैसे बर्दाश्त कर सकते हैं? यानी इस सीमा तक बर्दाश्त, कि रामप्यारी अपनी स्थूलता के प्रति खुद जो विद्रूप भाव रखती है, उसकी अपनी ओर से पुनरावृत्तियाँ नही करायें।

रामप्यारी यह सोचते हुए भी हँस ही पड़ी, कि अभी से यह

स्थिति है, तो कही वास्तव में माँ बन गई, तो तब दूध भर आने के कारण......

रामप्यारी यह सोचने की कोशिश करने लगी, कि मिसेज कपूर भी तो उसी की तरह स्थूल हैं। उनके तो कई बच्चे भी हो चुके है।......तब उस ब्लाउज को वो कैसे पहनती रही होगी, जो उन्होंने रामप्यारी को दे दिया था ? इतना पुराना तो दिखता नही जिससे ऐसा सोचा जा सके, कि तबका सिला होगा, जब मिसेज कपूर के बच्चे नही हुए होगे। जब मिसेज कपूर इतना स्थूल नही रही होंगी। रामप्यारी सोचने लगी, बिंदो चौधरानी काम पर चली जाए, तो झुग्गी में अकेले रह जाने पर, एक बार फिर मिसेज कपूर के दिए हुए ब्लाउज को पहन कर देखेगी।

"रामप्यारी !"—बिंदो चौधरानी, रोटियाँ डिब्बे मे सहेजती हुई, अन्दर से बोली—"चौधरी तो कही सीधे कालू चरन के धोरे से ही ना चले जावे मजूरी पर। आटा गुँथा हुआ छोडे दे रही हूँ, अपने और सुक्खू-बेलिया के लिए पो लेगी के ? मने कही देर-दार न हो जावे मजूरी पर पहुँचते।"

'बना लूँगी,' रामप्यारी ने जबाब दिया। उसे लगा, बिंदो चौधरानी के जाने तक का समय उसे बहुत लम्बा लग रहाहै। और दिनों पत्तो को बिंदो चौधरानी अपने साथ-साथ ले जाती थी, मगर आज घर पर ही छोड़ गई है। पत्तो का अपने लिए यो छोड़ दिया जाना, रामप्यारी को बुरा नहीं लगा है। किसी भी बच्चे का अपने लिए छोड़ दिया जाना, रामप्यारी को बुरा नहीं लगता है। पत्तो को उठाकर उसने कंधे पर चढ़ा लिया और 'टिरिंट—टिरिट' कुनमुनाती हुई, घुमाने लगी। शाहपुर कस्बे में डॉक्टर शर्मा के बच्चों को भी यों ही कधों पर घुमाया करती थी। शायद, डॉक्टरनी कहा करती थी, अपनी सहेलियों से, कि—'बिल्कुल 'जू' की हथिनी की तरह चढ़ाए

रहती है बच्चों को। बड़ा लड़का कंधे पर से नीचे पाँव लटकाए-लटकाए पाँवों की एड़ियों से झटके देता रहता है और वह मोटी और ज्यादा तरन्नुम के साथ टिरिट-टिरिट टिरिट-टिरिट चिल्लाती रहती है। हमारे डॉक्टर साहब कहा करते हैं कि ऐसी औरतें बड़ी 'लस्टफुल और सेक्सी होती है।

डॉक्टरनी ने रामप्यारी के लिए कई बार, उसकी उपस्थिति में ही, अपने पति से बातें करते हुए 'सेक्सी वूमन' कहा था और डॉक्टर शर्मा ने उसकी तरफ से अपनी आँखें हटा ली थीं। रामप्यारी ने आखिर कम्पाउन्डर रस्तोगी से 'सेक्सी वूमन' का अर्थ पूछा था और कम्पा-उन्डर ऐसे हँस पड़ा था, जैसे वह खुद भी उसे ठीक वैसा ही समझता हो। रामप्यारी ने फिर कभी नहीं पूछा था। रामप्यारी ने उस शब्द के अर्थ को कभी नही जाना। रामप्यारी ने सिर्फ इतना अनुमान लगा लिया था, कि उस शब्द का जो अर्थ उसे बताया जा सकता था, उससे सिर्फ उसकी स्थूल देह के मांस—मात्र की व्याख्या या परिभाषा गढ़ी जा सकती थी।......और सिर्फ अपने मांस की ही व्याख्या या परिभाषा को गढ़ने से रामप्यारी हमेशा बचते रहना चाहती रही है। इसीलिए रामप्यारी हथिनी सम्बोधन से भी आज तक तादात्म्य स्थापित नही कर सकी है। जब भी हथिनी के रूप में सम्बोधित की जाती है, रामप्यारी चौंकने और दुखी होने से नही बच पाती है।

रामप्यारी बाहरी आक्षेपों और स्थितियों से चौंकने और दुखी होने की निरंतरता से बचना चाहती है।.... .और मानसिकता की निरंतरता से बचने के लिए शारीरिकता की यथावतता से भी मुक्ति पाना जरूरी है। मगर ऐसा हो सकने की सम्भावना हो सकती है ? शायद, नहीं।

शायद, रामप्यरी के माँ बन जाने पर भी ऐसा नही हो पाएगा। ......और अगर हो भी जाए, तो उसके बाद अपनी स्थूलता के प्रति

किए जाने वाले अवांछित आक्षेपों—और अपनी ही हीन अनुभूतियों—से मुक्ति मनस्थिति के माध्यम से नहीं, बल्कि शारीरिकता के ही आधार पर मिलेगी !......और शारीरिकता के बोझ से शारीरिकता के ही आधार पर मिली हुई मुक्ति से अपनी मनस्थिति के बदल चुकने का बोध कदापि नही हो सकता ।......और जब तक मनस्थिति नहीं बदल चुकती, तब तक किसी भी स्थिति का बदलना भविष्य नही बन सकता है ।

बिंदो चौधरानी चली गई है और रामप्यारी पत्तो को एक कथरी पर सुलाकर रोटियाँ पकाने के लिए सिगड़ी की ओर बढ़ते-बढ़ते, अपनी वाली झुग्गी मे—उस झुग्गी में, जिसमें कल रात वह हरभजन चौधरी के साथ रही थी—वापस लौट आई है ।

मिसेज कपूर के 'ब्लाउज' को पहनने की चेष्टा करते हुए, रामप्यारी ने एक तो यह अनुभव किया कि अगर वह भी उनकी—मिसेज कपूर की—तरह अगिया पहनती होती, तो, शायद यह 'ब्लाउज' उसको भी ठीक-ठीक आ जाता । दूसरे यह, कि मिसेज कपूर और उसकी शारीरिकता मे विशेष अन्तर नही है, मगर मानसिकता में है । इसीलिए मिसेज कपूर जब अपने पति की पीठ पर हाथ मारकर, उनके कंधे पर ठुड्डी टिकाकर हँसती चली जाती हैं, तो ऐसा कहीं भी महसूस नही होता, कि उस समय उन्हें हँसने की जगह सिर्फ चौकना चाहिए था ।

ऐसे मे कपूर साहब भी सिर्फ हँसते हैं, चौकते नही हैं ।

कल की रात कटते-कटते, उजाला होने से पहले-पहले—अपने जीवन के सर्वथा अननुकूल क्षणों के प्रति कौतूहल से अचकचा कर—रामप्यारी ने भी अपनी हथेली हरभजन के सीने पर जड़ दी थी और फिर उसी पर अपना मुँह टिकाकर, होंठो से ठीक वैसे ही कुछ बुदबुदाती रही थी, जैसे डॉक्टर शर्मा के बड़े लड़के को 'टिरिट-टिरिट' कराया करती थी ।

हरभजन एकदम चौंक पड़ा था—"अरे, री रामप्यारी ! तूं तो खूब खेली-खाई हुई औरत मालूम पड़ती है ? मैं तो तुझे मर्दों की छोडी कँवारी औरत समझे बैठा था के ?"

और इसके बाद हरभजन चौधरी हँस पड़ा था—"एक बार मैंने एक ऊँट और ऊँटनी को देख लिया ! अब तूं जान के घणा चाहते भी नजर ना हटा पाया मैं तो । फिर ऊँट खेत में बैठ लिया, तो उँटनी खड़ी-की-खड़ी उसकी पीठ पर अपना थूथना घिसती रही और बुल-बुल-बुल-बुल यों करती रहे, जैसे......कही तूने भी कदी देख ना रक्खा होवे ऊँट-उँटनी को ?"

रामप्यारी जानती है, उस समय भी उसको शर्म के मारे मुँह पर कपड़ा दे लेना चाहिए था । रामप्यारी तब भी चौंक उठी थी और हरभजन चौधरी को अँधेरे में ताकती रह गई थी । फिर उसे लगा था कि हरभजन भी उसे घूर रहा है । फिर उसने अनुभव किया था, कि अँधेरे में बघेरा ज्यादा साफ-साफ देख सकता है । अँधेरे मे भी बघेरा सिर्फ माँस को ही साफ-साफ देख सकता है ।

हरभजन न रामप्यारी के अन्दर के कौतूहल को देख पाया था, न रामप्यारी के अन्दर की कचोट को । मगर रामप्यारी तो देखती है । रामप्यारी खुद देखती है और इसीलिए दूसरों के द्वारा अपनी मानसिकता का नही, बल्कि सिर्फ शारीरिकता का देखा जाना उसे दुखी कर रहा है ।

रामप्यारी ने 'ब्लाउज' उतार दिया ।

रामप्यारी याद करने लगी, कि जिस समय पत्तो का मुँह उसने अपनी छाती पर टिका रखा था, उस समय कभी-कभी वह भी तो उसकी धोती को मुँह में भर लेती थी ? धोती को चूसते हुए, ठीक वैसे ही बुदबुदा रही थी, जैसे रामप्यारी बुदबुदा उठी थी ? यानी वैसे, जैसे रामप्यारी—या कि कोई भी दूसरी औरत—तब बुदबुदाने लगे

सकती है, जब किसी ऐसी मनस्थिति से गुजरना पड़ रहा हो, जिसे शब्दों-द्वारा अभिव्यक्त नही किया जा सकता।

छोटे-छोटे बच्चे शब्दों-द्वारा अपनी बात नहीं कह पाते हैं। तो क्या छोटे-छोटे बच्चे भी ठीक वैसी ही मनस्थितियों से गुजरते होते हैं, जैसी अजीब-सी—अपनी शारीरिकता से बिल्कुल कटी हुई-सी—मनस्थितियो से अक्सर रामप्यारी गुजरती है? तो क्या छोटे-छोटे बच्चों से भी इसी तरह के प्रश्न पूछे जा सकते हैं, कि उन्होने कहीं ऊँटनी को देखा है? तो क्या पत्तो की जो माँ मर गई है, वह भी काफी कद्दावर औरत रही होगी?

रामप्यारी पत्तो वाली झुग्गी में लौट आई। इस झुग्गी के अन्दर प्रवेश करते ही रामप्यारी को यह अहसास हो आता है, कि यह बिंदो चौधरानी वाली झुग्गी है। और, ऐसा अहसास होते ही, रामप्यारी यह भी सोचने लगती है, कि शायद, आज पत्तो, सुक्खू और बेलिया को उसे अपने साथ सुलाना होगा।

जो कुछ भी संभाव्य होता है, उसे रामप्यारी पहले ही सोच लेती है। रामप्यारी को याद आया, कि पत्तो को गोद मे लिए-लिए एक बार अपनी कुरती का एक बटन खोल लेने की इच्छा हो आई थी उसे। इच्छा हो आई थी, मगर रामप्यारी इस संभावना को सोच लेने के कारण ही बटन नही खोल पाई थी, कि बच्ची कहीं सचमुच न दूध पीने की कोशिश करने लगे!...रामप्यारी सहम उठी थी। इस संभावना से नही, इस आशंका से, कि बच्ची कहीं दूध पीने में असमर्थ रही, तो? संभाव्य आशंकाओं को यों पहले ही भोग लेने के कारण, रामप्यारी के लिए आने वाले भविष्य का आकर्षण बहुत धुंधला पड़ जाता है।

रोटियाँ बनाते-बनाते, रामप्यारी फिर हँस पड़ी, कि आखिर सिर्फ

वही क्यो इतना-कुछ सोचते चले जाने की अर्द्ध विक्षिप्तता से गुजरती है, मिसेज कपूर क्यो नही ?

मिसेज कपूर से अपनी तुलना करते हुए, रामप्यारी को एक अजीब-सी अनुभूति होती है। आत्म-ग्लानि के सुख और हीनता-बोध के दुख की मिली-जुली अनुभूति। आत्म-ग्लानि का सुख इस तरह का कि कई बार रामप्यारी इस बात की कल्पना कर बैठती है कि अगर वह, बिंदो चौधरानी की जगह, सीधे-सीधे मिसेज कपूर की ही सौत बन जाती तो ? ऐसी कल्पना करते हुए, रामप्यारी का मन कपूर साहब की पीठ पर हथेली मारकर, उनके कंधे पर मुँह टिकाकर, हँसते चले जाने को हो आता है। रामप्यारी ऐसा सब कुछ अपनी कल्पना मे करती है और फिर उसे आत्म-ग्लानि हो आती है कि जिसमे पाप की मानसिकता में से गुजर जाने की प्रवृत्ति हो, उसके लिए फिर पाप की शारीरिकता मे से न गुजर पाना सिर्फ उसी मजबूरी की स्थिति में सभव हो सकता है, जिसमे उसकी असमर्थता मूल कारण हो।

रामप्यारी इस असमर्थता को—कपूर साहब और अपने बीच के फर्क को—बिल्कुल साफ-साफ अनुभव करती है। रामप्यारी ऐसा करती है, और फिर हीनता-बोध से दुखी होती है।

रामप्यारी को यह बोध बहुत कचोटता है, कि अगर कपूर साहब चाहते—या अब भी कभी चाहे—तो रामप्यारी की पीठ पर हथेली मारकर, खिलखिला सकते है, मगर रामप्यारी चाहने पर भी ऐसा नही कर सकती। हरभजन चौधरी ने कल ऐसा ही किया था, और जोर-जोर से खिलखिलाया था। रामप्यारी भी कल रात कटते-कटते ऐसा कर बैठी थी, मगर उसका खिलखिलाना छोड, मात्र बुदबुदाना भी हरभजनी चौधरी के लिए एक विकट, हास्यास्पद व्यंग करने का कारण बन गया था।

जब भी मनुष्य अपनी तात्कालिकता में से नही गुजर पाता है और,

बाहरी तौर पर उस तात्कालिकता के लिए अपेक्षित समय बीत चुकने के बावजूद, मनस्थिति की वह तात्कालिता ज्यों-की-त्यों बनी रह जाती है, ऐसा ही होता है।

रामप्यारी जानती है, कि अगर मास्टर सतपालसिह ने उसे परि-व्यक्ता न बना दिया होता—और वह मास्टर साहब के सीने पर हथेली मारकर, उस पर मुँह टिकाकर, आज से नौ-दस वर्ष पहले ही बच्चो की तरह बुदबुदाती होती—तो हरभजन चौधरी का प्रश्न झेलने की स्थिति कदापि सामने नही आती। तब रामप्यारी वास्तव मे अन्दर से भी खूब खेली-खाई औरत होती और बाहर से भी।

तब रामप्यारी शरीर से इतनी स्थूल और मन से इतनी सांकेतिक नही होती। तब रामप्यारी इस मनस्ताप से नही दुखी होती, कि अपने कुँवारेपन के बावजूद वह पूर्वभुक्ता समझी जाती है।

कुँवारी समझी जाने और कुँवारी होने का जो सुख रामप्यारी पाने की आशा कर रही थी, वह हरभजन ने दिया नही है। रामप्यारी ऐसा समझे जाने और होने का सपना कल्पित रूप से देख चुकी थी, मगर यथार्थ मे वैसा नहीं समझा गया है, नही हुआ है।

स्वप्न का फलित यथार्थ हमेशा विलोम ही होता है।

तो क्या रामप्यारी यथार्थ को ही पहले भोगे ?

रामप्यारी को फिर हँसी आ गई।

रोटियाँ पका चुकने के बाद, उसने सुक्खू और बेलिया को जल्दी-जल्दी खिला दिया, मगर खुद नही खाया। पत्तो निंदियाने लग गई थी, उसी के साथ कथरी पर रामप्यारी भी लेट गई। मगर फिर, कुछ ही क्षणों-बाद उठ, गई। सुक्खू और बेलिया झुग्गी के बाहर खेलने लग गए थे। रामप्यारी ने झुग्गी का दरवाजा बन्द कर दिया।

अँधेरे में रामप्यारी को साफ-साफ नहीं दिखाई देता है। दिन मे थोडा-सा भी अँधेरे का हो आना आँखों को धुँधला बना देता है। धुँधलके

में रामप्यारी को पत्तो कथरी पर डॉक्टर शर्मा की बिल्ली की तरह सोई हुई दिखाई देती है।

रामप्यारी ने टँगी हुई हाँडी में रखा हुआ जस्ते का कटोरा निकाला। अँधेरे में हाथ भी हिलते-से लगते हैं। रामप्यारी आत्म-निषेध की स्थिति से गुजरना चाहती है, मगर हिलते हुए हाथों से अपने-आप कुरती के बटन खुल जाते है। अपने-आप कटोरे मे से दूध छलक जाता है। ओधी सोई हुई पत्तो करवट बदल लेती है।

रामप्यारी यथार्थ को चुपचाप बर्दाश्त कर लेती है।

रामप्यारी अनुभव करती है, कि सबेरे से ही शुरू हो गए मानसिक तनाव से उसे मुक्ति मिल रही है।

●

८

सोचते-सोचते भी काफी पसीना हो आता है। शायद, सोचते हुए भी नसों में उतना ही बोझ पड़ता है, उतनी ही थकान अनुभव होती है, जितनी ईंटें ढोने मे होती है।

कम-से-कम रामप्यारी के साथ ऐसा ही होता है। इधर, न-जाने कब से, रामप्यारी कुछ इस तरह से सोचने लग गई है, कि अनुभूतियों का दबाव सिर्फ हृदय और मस्तिष्क पर ही नही बल्कि सारी देह में अनुभव होता है। रामप्यारी कुछ ऐसे सोचती है, कि जितना-कुछ काल्पनिक रूप से बर्दाश्त करती है, वह सब उससे भी ज्यादा तेजी से अनुभूतियों में बदल जाता है, जितनी तेजी से यथार्थ में झेली हुई मनस्थिति अनुभूति बन पाती है।

और मात्र सोचना—सिर्फ काल्पनिक-चिंतन—जब अनुभूतियों के स्तर पर ग्रहण किया जाने लगता है, तो फिर बोझ सारे मष्तिस्क पर पड़ने लगता है। सिर्फ मानसिक-तनाव ही नहीं, शरीरिक-तनाव भी महसूस होता है। और ऐसे स्वय ही उपजाए हुए स्नावयिक-तनाव के

बीच, लगता है, सारी नसो में कही खून के साथ-ही-साथ पसीना भी पूरी देह मे बह रहा है।

अंदर-ही-अंदर बह रहे पसीने को पोंछ पाना सम्भव नहीं होता है। सिर्फ उसके सूखने—या फिर उसको बहते हुए बर्दाश्त करने का अभ्यस्त हो जाने—की प्रतीक्षा की जा सकती है। रामप्यारी ऐसा ही करती है।

रामप्यारी न तो तय कर पा रही थी—और न ऐसा करने की कोई आवश्यकता ही अनुभव कर रही थी—कि दोपहर को उसे नीद आ गई थी, या कि वह लगातार तीन-चार घण्टे सिर्फ यही प्रतीक्षा करते रह गई थी, कि उसे नींद आए।

न-जाने अपनी दैहिक स्थूलता के कारण या कि अपनी मानसिक दुर्बलताओ के कारण—हाथियो और बच्चो की ही तरह—रामप्यारी भी दोपहर को सोने का अभ्यस्त रहती आई है।...और जहाँ-जहाँ, जब-जब रामप्यारी को दोपहर में सो जाने की सुविधायें नहीं मिली है, रामप्यारी ने हमेशा ऐसा महसूस किया है, कि उसे नींद आ रही है। नीद आ रही है इस बात की पूरी-पूरी अनुभूति के लिए रामप्यारी ने अपने को सोच-सोच कर ठीक वैसी ही मनस्थितियों में ले जाने की कोशिशें की है, जैसी स्वप्नाविष्ट होने की स्थिति में हो सकती हैं। मगर, इसके बावजूद, आज रामप्यारी ने नीद आ जाए, इस बात की प्रतीक्षा-भर की है, ऐसा चाहा नही है। चाहा यह है, कि किसी भी तरह अपने मन और शरीर के उस तमाम खारेपन से मुक्ति मिल जाए, जिससे अपने सारे अस्तित्व में खून के साथ-साथ पसीना भी बहता हुआ महसूस होता है।

ऐसा महसूस होने—अंदर-ही-अंदर पसीजते रहने—का कारण सिर्फ यही हो सकता है, कि रामप्यारी अब भी बहुत असंतुलित मनस्थितियों

से गुजर रही है। और ऐसी मनस्थितियों से गुजरते रहने का अर्थ अपनी जिंदगी की—अपने वर्त्तमान की—तात्कालिकता से कटे रहना है। अपनी जिंदगी की—यानी अपनी अनुभूतियों की—तात्कालिकता से कटे रहने के कारण ही तो रामप्यारी अकसर हँसने की बात पर सिर्फ उदास होकर रह जाती है। शर्म महसूस करने की जगह, सिर्फ चौंककर रह जाती है। हरभजन चौधरी-जैसे पुरुष के 'तूँ तो खेली-खाई हुई औरत दिखती है!' कहकर, पीठ पर थाप मारने पर न तो उसके सीने पर टिकाई हुई अपनी हथेली को और भी गहरे तक धँसाकर, उस पर अपने मुँह को एकदम छिपाने की कोशिश करते हुए, अपने कौमार्य का बोध उत्पन्न कर सकती है—और न सीने पर से हथेली को काफी ऊपर उठाकर उसे फिर सीने पर ऐसे जोर से टिका सकती है, कि खुद को भी ऐसा अहसास हो सके, कि ये क्षण जिंदगी मे पहली-पहली बार ही नही आ रहे हैं। या बेहद शर्म महसूस करके अनजान बन जाने, या लज्जा के उन्मत्त प्रदर्शन के द्वारा पूर्वभुक्ता होने की तात्कालिकता मे से गुजरने की जरूरत रामप्यारी महसूस तो करती है, मगर संदर्भ की तात्कालिकता मे उससे ऐसा कुछ भी नही हो पाता है। रामप्यारी सिर्फ थोड़ा-सा चौकती है और सोचती चली जाती है।

हरभजन ने कल रात कहा था। रामप्यारी आज दोपहर-बाद तक यही सोचती चली आ रही है। रामप्यारी इसी सोचने से मुक्ति चाहती है। रामप्यारी अब अपने जीवन की तात्कालिकता में से गुजरना चाहती है, ताकि अतीत—सिर्फ अतीत, वर्त्तमान तात्कालिक रूप मे वर्त्तमान और भविष्य वाछित रूप में भविष्य महसूस हो सके। रामप्यारी यही निर्णय करने में लगी हुई है, कि आज बिंदो चौधरानी ने लौटने पर अगर खुद ऐसी आँखों से देखा, कि 'भैसा नई-नवेली दुलहन-जैसी पसरी पड़ी है!' तो खुद भी कुछ ऐसी आँखें बना लेगी, जिनसे बिंदो चौधरानी को यह महसूस हो जाए, कि रामप्यारी कहना चाहती है—यानी कहती नहीं है,

सिर्फ महसूस कराती है—कि उम्र और जिस्म में बड़ी होने के बाव-जूद, वह बिंदो चौधरानी से नई-नवेली है। और घर बैठने के बाद के कुछ दिनो तक तो दुलहन की तरह घर में ही पड़ी रहने का उसे पूरा-पूरा हक है !

और कही, इसी नाते, आज भी हरभजन चौधरी कीझुग्गी में खुद उसे ही सोना पड़ा तो ?

रामप्यारी सोचने लगी, कि आज रात हरभजन चौधरी की ओर से क्या-क्या बातें आ सकती हैं और तात्कालिक रूप से उनके क्या-क्या उत्तर दिए जा सकते है, या कि अपनी ओर से क्या-क्या प्रतिक्रियाएँ दिखाई जा सकती है।

हर भजन चौधरी ने कल ऊँट-ऊँटनी का जिक्र किया था।

हरभजन चौधरी आज यह भी तो पूछ सकता है, कि रामप्यारी ने शायद, हथिनी और बघेरे को भी कही जंगल मे एक साथ सोया हुआ देख रखा है ! ...शायद, सिर्फ ऊँटनी बुलब्ल-बुल-बुल नही बुद-बुदाती है, बल्कि हथिनी भी बघेरे की पीठ पर अपनी सूंड रख देती है और .....

रामप्यारी का मन वितृष्णा और लज्जा से एकदम बेचैन हो आया। वह उठ बैठी। उठते में दोनों हाथ सामने आए, तो रामप्यारी का मन अपनी कलाइयाँ नापने को हो आया। कलाइयाँ नाप चुकने के बाद भी अनिर्णय की स्थिति बनी रही, तो रामप्यारी ने अपने बाजुओ को नापा और एकबार फिर से मिसेज कपूर का दिया हुआ 'ब्लाउज' उठाकर, उसकी आस्तीनों को गोलाई में फैलाकर देखा।

इस बार रामप्यारी को मद्धिम-सी हँसी अपने होंठों पर फैलती लगी और अनुभूति की इस तात्कालिकता के बोध ने उसे थोड़ा-सा आश्वस्त किया। मगर रामप्यारी अपने पाँवों की पिण्डलियाँ नाप चुकने के बाद अपनी जँघा का गोलाई नापने लगी, तो सुतली का टुकड़ा अर्द्धवृत्ताकार

बन कर ही समाप्त हो गया। कमरे में दोपहर-बाद का उजाला, झुग्गी का दरवाजा बंद होने के बावजूद, काफी था, मगर रामप्यारी खुद अँधेरा-सा महसूस करना चाहती थी।

रामप्यारी उतना अँधेरा महसूस कर रही थी, जितना इस तरह की बातें सोचने के लिए जरूरी होता है।

अपनी लटी में लगा हुआ 'रिबन' रामप्यारी ने निकाल लिया, जिसे डाक्टर शर्मा के यहाँ, शुरू-शुरू मे, तितली की तरह सिर पर बिठा लिया करती थी, मगर बाद में लट मे गूँथना शुरू कर दिया था। 'रिबन' यह न जाने कबका और कौन-सा है, मगर इसके रिबन होने की अनुभूति एक-सी है। तेल से चिपचिपे हो आए 'रिबन' को रामप्यारी ने फैलाकर मोड़ा, मगर दोनों हाथो के अँगूठे आपस मे मिल नही पाए।

रामप्यारी को अपने मुटापे का पूरा-पूरा बोध आज हुआ और वह एकाएक चौक उठी। पेटीकोट के नाड़े को उसने साँप की तरह सरकता हुआ-सा महसूस किया। शाहपुर के खेलाराम दर्जी का मजाक रामप्यारी को अब भी याद आता है।

निजामुद्दीन के 'बस-स्टैन्ड' के आस-पास गूँजती हुई आवाजे रामप्यारी को अब भी याद आती हैं। मगर रामप्यारी यह ठीक से याद नही कर पा रही है, कि इससे पहले कभी उसने मिसेज कपूर के द्वारा उसको अपनी पुरानी अंगिया दिए जाने की कल्पना की थी, या नही। रामप्यारी ऐसा करनी भी नहीं चाहती। रामप्यारी, फिलहाल, अपनी अनुभूतियों की तात्कालिता में जीना चाहती है। मिसेज कपूर के साथ अपनी तुलना करते हुए, रामप्यारी अपने को ऐसे ही जीता हुआ महसूस करती है। अगर हरभजन ने ज्यादा आपत्ति नहीं की, तो रामप्यारी कल से मजदूरी पर जाने लगेगी। मिसेज कपूर का उसे इस बात को जान लेने के बाद देखना, कि रामप्यारी हरभजन चौधरी के घर बैठ

चुकी है—उस देखने मे जरूर कुछ-न-कुछ उस दिन के देखने से नया होगा, जिस दिन पहली बार रामप्यारी को मजदूरी मिली थी। रामप्यारी इतना तय कर पाती है, कि मिसेज कपूर का उसे एक मालकिन की हैसियत से देखने की अपेक्षा, सिर्फ एक औरत की हैसियत से देखना जरूर नया लगेगा।

सोचते चले जाने की स्थिति से थोड़ा-सा उबरते ही, रामप्यारी को सुक्खू और बेलिया की याद हो आई। बीच में कई बार रोने-कुनमुनाने के बाद, पत्तो अब भी सोई हुई थी। सुक्खू और बेलिया को, काफी देर पहले, रामप्यारी ने झुग्गी के बाहर-बाहर दूसरे बच्चों के साथ गाते-चिल्लाते हुए सुना था। अब, शायद काफी दूर निकल गए है। एकाएक रामप्यारी सोचने लगी, कि कहीं हरभजन चौधरी के आने तक भी बच्चे नही लौटे—और बिन्दो चौधरानी गरदन मटकाती उन्हें ढूँढने निकली—तो यो न सुनना पड़े, कि उसके आते ही बच्चे और ज्यादा लावारिश हो गए हैं। ऐसा सुनने की आशंका हो आने पर, रामप्यारी को फिर से अपने गृहिणी हो चुकने का बोध हो आया और वह थोडा-सा हँस पड़ी। ठीक से कपडे पहन कर रामप्यारी बाहर निकल गई।

सर्दियों में धूप बहुत जल्दी उतरने लग जाती है।

बड़ी-बड़ी आलीशान कोठियों वाली लिंक रोड के बिल्कुल समानांतर पसरी पड़ी इस झुग्गी बस्ती को अपनी ससुराल की तरह देखने लगने पर, रामप्यारी को अपनी आँखों की रोशनी ठीक वैसे ही नीचे उतरती महसूस हुई, जैसे किसी पपीते के पेड से बिल्ली नीचे को उतर रही हो।

रामप्यारी कुछ शर्म-सी महसूस करने लगी। रामप्यारी को अपना शर्मिन्दा हो आना अच्छा लगा। उसने कालूचरन के छोटे बच्चे को

टूटी हुई सुराही मे पेशाब करने की कोशिशें करते-करते गिरता हुआ देखा और जोर से हँसी आ गई। कालूचरन का बाप अपने बुढापे के कारण झुग्गी के पिछवाड़े ही निबटने बैठा हुआ था, रामप्यारी को देखकर, जल्दी मे उठते हुए, लुढ़क पडा। रामप्यारी मुँह पर कपड़ा करके तेजी से आगे निकल गई और फिर मुँह में ठूँसा हुआ कपड़ा निकालकर, जोर-जोर से हँसी। हँसी उसको सिर्फ इस बात पर आ रही थी, कि कालूचरन के बाप और कालूचरन के बेटे की मानसिकता में उसे जरा-सा भी अन्तर नहीं दिखाई दिया था। उसने सोचा था कि बुड्ढा सिर्फ अपनी असमर्थता के ही कारण नही, बल्कि अपने बचपने के कारण भी झुग्गी के पीछे ही बैठ लिया था।

झुग्गियो की अगली कतार मे पहुँच जाने पर, रामप्यारी ने एक बुढिया को दो पोतियों को रोटी चूर-चूर कर खिलाते देखा और उसे याद आया, कि दोपहर—बाद उसके बच्चो ने कुछ भी नही खाया-पिया है। सुक्खू और बेलिया को अपने बच्चों के रूप में महसूस करते हुए, रामप्यारी को एक आन्तरिक-सुख का बोध हुआ, वह चौकी नहीं। झुग्गियो की चौथी कतार के पार, नाले के किनारे के छोटे-से तालाब के चारों ओर उसे बच्चो की भीड़ दिखाई दे गई। उसने उसी भीड के बीच कही सुक्खू और बेलिया का होना भी अनुभव किया। तालाब के किनारे का जंगली शहतूत का पेड़ उसे उतरती हुई धूप मे हिलता हुआ-सा दिखाई दिया।

रामप्यारी ने महसूस किया, झुग्गी बस्ती को आर-पार तक देखते हुए वह अपने को यहाँ की जिन्दगी की सामूहिकता के बीच कुछ जैसे आंदोलित-सा अनुभव करती है, वैसे ही अपने को हिलता हुआ, शायद, शहतूत का पेड़ भी महसूस करता हो। रामप्यारी को अपनी यह अनुभूति सिर से लेकर, पाँवों तक ठीक वैसे ही सरसराती और उतरती

हुई-सी लगती है, जैसे पपीते के पेड़ के हिलने पर बिल्ली नीचे उतरने लगती है।

ऐसा सोचने की—प्रकृति और परिस्थिति को अपने समानातर रखने की—मनस्थिति को रामप्यारी अपने लिए एकदम अजनबी पाती है। रामप्यारी को यों तुलनात्मक दृष्टि से अपने को देखना अच्छा लगता है। मिसेज कपूर हो या शहतूत का पेड—किसी से भी अपनी मनस्थिति की तुलना करते हुए रामप्यारी को अपने अकेलेपन के बोध से मुक्ति मिलती है।

बच्चों की भीड़ रामप्यारी को देखकर, कुछ सचेत हो गई थी। रामप्यारी साफ-साफ नहीं देख पाई, कि सबके चेहरे उसी की ओर है, या नही। रायप्यारी ने महसूस किया, कि सबकी आँखों में एक अनायास कौतूहल उमड़ आया है—एक ऐसा कौतूहल, जैसा रामप्यारी-जैसी औरत को देखते ही सिर्फ बच्चों की ही नही, बल्कि बुड्ढो की आँखों मे मी उमड़ आ सकता है। रामप्यारी तुलना करने लगी, कि जैसा कौतूहल खुद उसकी आँखों में कालूचरन के बूढ़े बाप को लुढ़कता देखकर उभरा था, उसमें और ख़ुद उसके द्वारा उत्पन्न कर दिए जाने वाले कौतूहल मे क्या कोई समानता नही है ?

मिसेज कपूर कपूर साहब की पीठ पर थाप मारकर, उनके कंधे पर मुँह टिकाकर हँसती हैं—अगर रामप्यारी ऐसा करे, यानी हरभजन चौधरी की पीठ पर थाप मारे तो क्या दोनों में साम्य नहीं होगा ?

रामप्यारी घुटने उचकाकर, थोड़े ऊँचे टीले पर खड़ी हो गई। उसने लिंक रोड के पूर्वी पार्श्व मे फैली हुई कोठियों को देखा। उसे लगा, इन कोठियो की भव्यता को देखते हुए भी उसके मन में ठीक वैसी ही प्रतिक्रिया हो रही है, जैसे मिसेज कपूर को देखकर हुई थी। रामप्यारी ने आँखें समेटकर, फिर सारी झुग्गी बस्ती के ऊपर उन्हें फैला दिया। उसको ठीक वैसी ही अनुभूति हुई, जैसी मिसेज कपूर के

ऐश्वर्य मंडित व्यक्तित्व को पहली-पहली बार देखने के दिन, उनके पुराने कपड़े लेकर लौटते हुए अपने को देखते-देखते हुई थी।

मिसेज कपूर के बारे मे लगातार सोचते-सोचते, रामप्यारी महसूस करने लगी है कि कही-न-कही, किसी-न-किसी स्तर पर वह मिसेज कपूर की बराबरी पर है। सिर्फ शारीरिकता मे नहीं, बल्कि कही-न-कहीं मानसिकता मे भी उन दोनो में कोई साम्य क्या नही हो सकता ? लिकरोड के उस पार की कोठियो और इस ओर की झुग्गी बस्ती मे बहुत ही ज्यादा फर्क है, मगर दोनों की आधार भूमियाँ बिल्कुल बराबरी पर, बिल्कुल एक-सी हैं। .. ..और रामप्यारी अगर झुग्गी बस्ती मे खड़ी होकर, मिसेज कपूर या कपूर साहब को लेकर कल्पनाये कर सकती है, तो क्या यह सम्भव नहीं है, कि मिसेज कपूर अपनी कोठी के लॉन मे टहलती हुई रामप्यारी या हरभजन चौधरी के बारे मे कोई कल्पना करें ?

मिसेज कपूर-जैसी औरतो के लिए क्या यह सम्भव नही है, कि जैसे रामप्यारी अपनी अनुभूतियों को पपीते के पेड से नीचे उतरती हुई बिल्ली-जैसा महसूस करती है, वैसा वो भी करें......और पपीते के पेड़ पर से उड़ी हुई चिड़ियो के झुण्ड आकाश की ओर वृत्ताकर उड़ते चले जाएँ और मिसेज कपूर—तथा उन-जैसी औरतें—उन्हें एक टक घूरती रहें और फिर नीचे उतर आएँ ! ऐश्वर्य की तमाम ऊँची मीनारों को बिल्ली के जैसे पंजों वाली अनुभूतियों से खरोंचती हुई नीचे उतरती चली आएँ !

हो सकता है, ऐसा—रामप्यारी के स्तर तक मिसेज कपूर की मानसिकता का उतर आना—संभव न हो ? मगर रामप्यारी को ऐसा संभव मानते हुए इस गंदी-दरिद्र झुग्गी बस्ती के बीच भी अपने इससे ऊपर उठे होने का बोध होता है। रामप्यारी को इस बोध को, इस मिथ्यायास को बनाए रहना अच्छा लगता है।

बस्ती के तालाब के किनारे कीचड-ही-कीचड़ है, मगर टीलों के आस-पास की मिट्टी एकदम सूखी भुरभुरी है। रामप्यारी ने बच्चो को कीचड़ में से कंकड़े बीनते और मुठ्ठियो में मिट्टी भरते देखा है।

रामप्यारी अपनी उपस्थिति के प्रति सचेत हो जाती है।

थोडी दूर तक तो रामप्यारी सिर्फ बेलिया को गोद में उठा लाई, मगर फिर सुक्खू को भी उठाकर कंधे पर चढ़ा लिया। अनायास ही उसके मुँह से टिरिट-टिरिट-टिरिट-टिरिट की अस्फुट-सी आवाज निकली। थोडा-सा, शायद, वह हिल भी गई। जितना चलनें के कारण हिलती चली आ रही थी, उससे भी थोडा अतिरिक्त। सुक्खू के पाँव नीचे के लटक आए थे। रामप्यारी ने उसे जल्दी से नीचे उतार दिया और थोड़ी देर तक हँसती ही रह गई। उसको हँसी सिर्फ इस बात पर ही नही आई, कि डॉक्टरनी क्या आक्षेप किया करती थी, बल्कि इस बात पर भी आई, कि क्या वास्तव में वैसा ही नही होता है? अगर नहीं होता है· तो रामप्यारी बच्चों को नीचे उतारने के लिए झुकने के बाद, सीधी होते समय कुछ असुविधा क्यों अनुभव करती है? तो क्या हवा के दबाव से किसी भी तरफ को ज्यादा झुक जाने के बाद, अपनी पूर्व स्थिति में आते हुए पपीते के पेड़ो को भी ऐसी ही असुविधा अनुभव होती होगी? तो क्या अपनी जगह पर से इधर-उधर को हटी हुई तरबूज की बेल भी......

रामप्यारी को अपने प्रति तीखी वितृष्णा हो आई। जिस तरह की बातें दूसरों के मुँह से सुनने पर, वह अपने को एकदम निरीह और दूसरों को अपनी मानसिक कोमलता को कोंचने वाला समझने लगती है—ठीक उन्ही बातों को वह खुद ही अपने लिए तुलनात्मक दृष्टि से क्यों सोचने लगती है?

बिंदो चौधरानी और हरभजन चौधरी के लौटने तक, रामप्यारी ने बेलिया और सुक्खू के बाल भी सँवार दिए थे। हाथ-मुँह धोने और खेलने से लौटने के बाद तुरन्त रोटी मिल जाने से उनके चेहरे पर स्फूर्ति आ गई थी। बिंदो और हरभजन के मजदूरी पर से लौटने पर वो उनको जैसे देखते थे, उस देखने में फर्क आ गया था। प्रतीक्षा की विह्वलता की जगह, उनकी आँखों मे हल्की-सी चमक तैरती दिखाई दे रही थी।

रामप्यारी अनुभव कर रही थी, कि बिंदो चौधरानी सिर्फ बच्चो को ही नही, उसे भी गौर से देख रही है। रामप्यारी ने एक बार हर-भजन की ओर मुँह उठाया और तुरन्त घूँघट-सा डाल लिया—"चाय बना दूँ ?"

मिसेज कपूर की दी हुई धोती पारदर्शी है। रामप्यारी को बिंदो चौधरानी का चौकना और कुढ़ना साफ-साफ दिखाई दिया है। राम-प्यारी को हलकी-सी हँसी आ गई है। कुछ ऐसी हँसी, जिसे सौतिया हँसी कहा जा सकता है।

"दीदी, तुझे भूख तो नही लगी है ?"—रामप्यारी ने इस बार बिंदो चौधरानी से भी कपड़े की ओट से ही प्रश्न किया, तो बिंदो चौधरानी अपनी खीझ को सँभाल नही पाई—"क्यों, पराठे सेंक के रख रखे है तैंने मेरे लिए ?"

"क्यो, पराठे सेकते क्या देर लगती है भला ? मगर घी कहाँ रखा है, मुझे पता नही।"

"अरे, हाँ, हाँ, री बम्पू ! तुझे क्यों होने लगा पता भरतार की हवेली के मालगुदाम का ? चाबियों का गुच्छा तो सुसरा मैं ही ना खोस ले गई थी अपनी कमर मे ?"—बिंदो एकदम तमक कर रामप्यारी के बिल्कुल सामने खड़ी हो गई—"ना जाने कितनों का भट्टा बिठा कर यहाँ आई है, मस्ताना ! होर बात यों करती है, जनी गौने से भी ना

हुई हो बड़ी हवेली की बहू ! अरी, मुटार ! तूँ क्या सेंकेगी मेरे लिए पराँठें भला ? मैंने तेरा जाने किस लोक का जरीमाना भरना रहा होगा। लाया था बस्ती का सरदार आध सेर घी, सो तर माल खिलाकर सुला दिया तुझे तेरे भरतार के साथ !...बेशरम मुटार.. रात-भर आँख भी ना लगने दी दिन-भर की थकी को।"

तो क्या रामप्यारी ने बिल्कुल सही-सही कल्पनायें की थी ? बगल की झुग्गी मे पडी चौधरानी ने छोटे बच्चो को चिकोटियाँ वास्तव मे काटी थी ? तो क्या हरभजन सच्ची बात करता था--"मेरे को तो तूँ जान शुरू से ही ऐसी आदत पड़ गई है। जब तक बगल के कमरे मे दूसरी ना सोई हो, अपने को रँडवा ही समझा करता हूँ !" तो क्या रामप्यारी का--हरभजन चौधरी के 'खाई-खेली औरत' होने के आक्षप के बावजूद--अपने को कुँवारी ही महसूस करना और ठीक कुँवारियों की सी प्रतिक्रियाओ से गुजरना ठीक ही था ?

जिस तरह की गृहस्थी में रामप्यारी ने प्रवेश किया है, उसमें बिंदो चौधरानी का यों झोंटा फटकारते हुए लड़ने को आना भी गलत नही लगता है।

"अरे लो, तू तो एकदम गुस्सा हो गई, दीदी ? थप्पड़ मारने को जी करता है क्या मुटार बम्पू के मुँहपर ?"--थोडा-सा हँसते और मुँह बिंदो चौधरानी की ओर करते हुए, रामप्यारी को अपनी व्यवहार-कुशलता पर खुद ही आश्चर्य हो आया।

बिंदो चौधरानी भी औचक खड़ी रह गई। रामप्यारी की छोटी-छोटी आँखों के नीचे फैले हुए चेहरे पर खेलती शरारत उसे अपने सारे सहज डाह के लिए चुनौती-सी लग रही थी। वह तो चाहती थी, कि नौबत एक-दूसरे का झोंटा पकड़ने तक जा पहुँचे, तो कल-परसों से कड़ुवाये हुए मन का सारा आक्रोश बाहर निकल आए। एक क्षण पहले उसकी इच्छा हो रही थी, कि रामप्यारी का झोंटा पकड़कर

नीचे जमीन पर गिरा ले और फिर पीठ पर सवार हो जाए। मगर रामप्यारी के अप्रत्याशित व्यवहार और हरभजन के सीधे गुलबिया मौसी की झुग्गी की तरफ चले जाने से, वह क्षरा बीत चुका था। बिंदो चौधरानी अब यह सोचने लगी थी, कि अगर अब वह वास्तव मे रामप्यारी को गिराकर, उसकी पीठ पर बैठ भी जाए, तो रामप्यारी नीचे मुँह होने के कारण नहीं देख पाएगी और हरभजन रत्तो ताई के चूल्हे की तरफ मुँह करके चरस भरने में लग जायेगा। बिंदो चौधरानी सोचती चली गई, कि हरभजन जो कहा करता है, कि 'गुलबिया चरस ऐसे पीती है, जैसे चोखे-से-चोखा जोगडा-सन्नासी महाराज भी नही पी सक्ता !' इसमें जरा-सी भी तो अतिशयोक्ति नही है। बिंदो चौधरानी का मन भी ठीक वैसे ही चरस पीने को करता है, जैसे गुलबिया मौसी पीती है। जैसे चरस पीने से गुलबिया मौसी-जैसी अधेड़ उम्र की औरत की आँखो मे ऐसे-ऐसे लाल डोरे खिच आते है, कि हरभजन घर लौटने पर अकसर कहा करता है कि उसे गुलबिया मौसी में कालका देवी का रूप दिखाई पडता है !

गुलबिया मौसी की झुग्गी यहाँ से बिल्कुल आड़ मे है। गुलबिया मौसी का भी कोई और दूसरा नही है। रत्तो ताई की और उसकी उम्र में बहुत थोड़ा ही फर्क होगा, मगर रत्तो ताई मजदूरी पर जाती है। गुलबिया मौसी मजदूरी पर नही जाती।

सोचते-सोचते, बिंदो चौधरानी ठंडी हो आई और रामप्यारी से बोली—"बातून तो तूँ बहुत लगती है, मुटार !...मगर जो तूँ मेरे को यों दिखाना चावेगी, के तेरा सौतिया दरप मेरे कलेजे को करकेगा, तो तूँ यो जान, के मेरे घर में आ बैठी तूँ ही नही है, अपने घर में बैठी भी भतेरी होंगी।" और हँस पड़ी।

बेलिया बिंदो चौधरानी के नजदीक चली गई थी। बिंदो ने दोनों हाथो से उसके सिर को टटोला और चोटी के बीच में तितली की तरह

बँधे लाल डोरे को हिलाती हुई बोली—"सलीका तो तेरे को बडा है। पहले घरों के कितने हो लिए है ?"

रामप्यारी चौक सकती थी, मगर चौकी नही। रामप्यारी आक्षेप की तात्कालिकता के वर्त्तमान से हटकर, अपने मनस्ताप के अतीत मे लौट सकती थी, मगर लौटी नही।

रामप्यारी तुरन्त हौले से हँस पड़ी—"अरी, दीदी ! मेरे तो जो कुछ भी होने होगे, अब होगे।"

और बिंदो चौधरानी जब तक चौकने के बाद सँभले और व्यंग करे, तब तक रामप्यारी घूँघट निकाल कर, झुग्गी के अन्दर चली गई—"चाय चढा दूँगी ? चौधरी लौटते होगे।"

९

गुलबिया मौसी के यहाँ से लौटने पर, हरभजन चौधरी ने बताया, कि उसे बड़े जोर की भूख लगी हुई है। बिंदो चौधरानी फुसफुसा कर बोली रामप्यारी से, कि 'गुलबिया मौसी के यहाँ से लौटने पर इसे ऐसा ही होता है। अभी तो रोटियो की ही लगी होगी, भला, मगर फिर रात को भी सुख से पलक नही लगाने देगा। रात-भर नशे का मारा ऐसे बड़बड़ाएगा, जैसे खब्ती हो गया हो। कल को काम की छुट्टी है, इसी से चढा आया है। तूँ जान, कि ना दुपेर तक खुद उठगा, ना तुझे उठने देगा!'

बिंदो ने बात पूरी करके चिकोटी दी पाँव पर और जैसे कान से होठ चिपका कर हँसी, तो रामप्यारी एक क्षण को फिर अचकचा गई। उसे तत्काल यह सूझ नही पाया, कि उत्तर में वह क्या कहे। मगर फिर उसे लगा, कि बिंदो ने सिर्फ उसके पाँव को ही नहीं चिकोटा, कही अन्दर की किसी चीज को भी नाखूनों से ठीक वैसे ही दबा दिया है,

जैसे अपनी हथेलियों से मिसेज कपूर कपूर साहब के अपने से नीचे कंधों को दबोचती हैं।

रामप्यारी बिंदो चौधरानी वाली बात पर शरमाने की जगह, अपनी इस कल्पना से शर्म महसूस करने लगी और धोती का पल्ला मुँह पर दे लिया। बिंदो चौधरानी सोचने लगी, रामप्यारी उसकी बात से शर्म महसूस कर रही है—यानी आज भी हरभजन चौधरी के साथ खुद ही सोने मे उसे कोई ऐतराज नही है—मगर रामप्यारी इस बात पर शर्म के मारे हँसने-हँसने को हो रही थी, कि कही ऐसा तो नहीं, कि खुद उसके अन्दर किसी पुरुष के कंधों को अपनी हथेलियों से दबोचने की दमित तृष्णा शुरू से ही रही हो और इसीलिए उसे बार-बार मिसेज कपूर याद आती हों ?

रामप्यारी यह याद करने की कोशिश करने लगी, कि मास्टर सतपाल सिंह के कंधे उससे वास्तव में नीचे थे। बल्कि उससे भी ज्यादा नीचे जितने नीचे कंधे कपूर साहब के हैं। अरहर के खेत में से मास्टर सतपाल को जाते हुए देखने पर, रामप्यारी को, शायद, तब कुछ ऐसा लगा था, जैसे मास्टर सतपाल सिंह के कंधे अरहर के पौधों की बराबरी पर उनसे घिसटते चले जा रहे है। मास्टर सतपाल के आँखो से ओझल हो जाने पर, रामप्यारी सीधी, तनकर खड़ी हो गई थी—पृथ्वी को और ज्यादा दूर तक टटोलने के लिए—तो अरहर के पौधे उसके कंधों से काफी नीचे रह गए थे।

रामप्यारी बिल्कुल आकस्मिक रूप से अपने अतीत को लेकर सोचती रहती है और जब भी व्यक्ति सोचते रहने की स्थिति से गुजर रहा होता है, या तो अतीत को वर्तमान बनाता रहता है और या भविष्य को वर्त्तमान के स्तर पर ले आता है—और ऐसे में, तात्कालिक वर्त्तमान छूट जाता है।

रामप्यारी न जलती हुई रोटी को देख पाती है और न बिंदो चौधरानी के किए व्यंग को महसूस कर पाती है।

रामप्यारी को याद आता चला जा रहा है, कि रिश्ते की एक भावज ने उसे एक दिन अपने उस रोमांस की घटना सविस्तार सुनाई थी, जौ अरहर के पौधों के बीच सम्पन्न हुई थी।......और, शायद, रामप्यारी ने तब भी कुछ ऐसा सोचा था, कि अरहर के पौधो के बीच में मिस्टर सतपाल सिंह तो छिप सकता है, मगर वह नहीं छिप सकती है। उसकी रिश्ते की भावज और उसके प्रेमी को अरहर के पौधों के बीच होने पर, रामप्यारी नही देख सकती थी—मगर कहीं मास्टर सतपाल सिंह और वो अरहर के पौधो के बीच में होते, तो रामप्यारी देखी जा सकती थी।

हरिहरसिह अहीर के साथ यही तो हुआ था। रिश्ते की भावज ने जब देखा था, तब दोनों सिर्फ बातें ही कर रहे थे आपस मे, हालाँकि उस बीच हरिहर सिंह ने उसे एकाध बार अपनी बाँहो मे जरूर भर लिया था।

रामप्यारी फिर शर्म महसूस करने लगी।

बिंदो चौधरानी बोली—"अब यों गौने से लौटी हुई जैसी पल्ला ही मती करती रहे, रामप्यारी! ना सिकती हों, तो ला, अँगीठी मेरे धोरे रख दे।"

बिंदो चौधरानो की आवाज़ के रूखेपन से रामप्यारी सकपका-सी गई और उसे अपनी लापरवाही का बोध हो आया। हाथों की रोटी ज्यादा गोलाई में फैलकर, अँगुलियों से नीचे लटक गई थी। उसे जल्दी से तवे पर डालती हुई, रामप्यारी धीमे से बोल गई—"क्यो, दीदी? आज तो तुम्हें ही सुलाएँगे चौधरी अपने साथ? मैं तो कल सोई थी।......"

सिर्फ बिदों चौधरानी ने ही 'हाय, राम, ये तो निरी बेशरम

है ।' कहकर, मुँह नही फेरा, बल्कि खुद रामप्यारी भी आत्म-ग्लानि से अपने ही अन्दर गड़-सी गई, कि जिस बात को पहले तो कहना ही नहीं था और कहना भी था, तो अब से कई मिनट पहले—उस बात को अब कहना निर्लज्जता का प्रतीक भी न हो, तो अप्रासंगिकता का प्रतीक तो है ही. ...और प्रसंग की तात्कालिकता से हटकर प्रदर्शित की हुई लज्जा भी खटकने लगती है, निर्लज्जता की तो बात ही और है ।

बिंदो चौधरानी ही फिर बोली—"क्यों, तूं तो रत्तो ताई से यों कहती फिरे थी, के पहले ने तेरा गौना भी ना कराया होर फिर तूंने कोई दूसरा मरद किया ही ना था अबलों ? ना जो किया होता तैंने कोई मरद, तो इत्ती सारी दुनियादारी की बातें कहाँ से सीख लेती तूँ ? तूँ तो मने सौतो के बीच की रही हुई लगे है । चाहे तूँ मेरे कहने का बुरा मान, या भला—नही तो तेरे को यों पता कैसे चलता, कि सोने की भी पाली लगती है एक-दूसरे की ?"

रामप्यारी ने अनुभव किया, बिंदो चौधरानी के प्रश्नो के उत्तर मे ठीक वैसे ही चुप बैठे रह जाना, जैसे वह अब तक ऐसी स्थितियों मे चुप रहती चली आई है, अपने उस दुख को पुख्ता कर लेना है, जो यो लांछित होने पर उभर ही आता है । बल्कि प्रश्न सिर्फ दुख के नही, दुख महसूस कराने वाली मनस्थिति के पुख्ता हो जाने का ज्यादा महत्वपूर्ण है ।

रामप्यारी ने पल्ला मुँह पर से उतार लिया और बिंदो चौधरानी की आँखो से आँखे मिलाकर बोली—"क्या तुमने चौधरी के घर आने से पहले कुछ भी नही सीखा हुआ था क्या ! बुरा नहीं मानना, चौधरानी ! अरी यार, ये बातें भी भला किसी को सिखाने की है क्या ! ये सारी बाते तो हर औरत यार, खुद अपने ही अन्दर से सीखती है । एक-दूसरे का हक कौन नहीं समझता भला ?"

"हाय, राम ! तूँ तो बड़ी घुटी हुई जनानी है !"—बिंदो चौधरानी खिसियाई-सी बोल पड़ी—"तैंने तो ना जाने कितने दरबज्जों का कूड़ा बाहर निकाल रक्खा है।"

सिर्फ बिंदो चौधरानी ही नही कहती, रामप्यारी खुद भी कुछ ऐसा महसूस करती है, कि पिछले कुछ दिनों से वह ठीक कूडा बुहारकर बाहर फेंकने की सी ही मनस्थिति में जी रही है। जैसे घर का कूडा बुहार लेने पर, दरवाजे से बाहर फेंकते हुए सतर्कता पूर्वक देख लेना पड़ता है, रामप्यारी भी अपने अन्दर-ही-अन्दर बिखरे हुए शब्दों को एक करती है और फिर बोलती है, तो ऐसा महसूस करती है, जैसे शब्दों को दूसरे पर फेंक रही हो।......और, शायद, इसीलिए उसकी बातों को सुनकर, सुनने वाला ठीक वैसे ही बिदकता हुआ दिखाई देता है, जैसे आँगन में खडा कोई व्यक्ति अन्दर से कूडा फेंका जाने पर बिदक उठता है ! ऐसा वास्तव में होता है, या नही, कुछ निश्चित नही, मगर रामप्यारी ऐसा महसूस करती है।

रामप्यारी ने एक थाली में बहुत-सी रोटियाँ रख दी और उसके किनारे सब्जी भी डालकर, बिंदो चौधरानी से बोली—"उन्हे रोटियाँ दे लो, कहीं गुस्सा न हो जाएँ।"

बिंदो चौधरानी थाली लेकर चली गई, तो फिर रामप्यारी सोचने लग गई कि वह अपने-आपको टटोल-टटोल कर इस आत्म-स्वीकृति को पाना चाहती थी, कि सिर्फ दो ही दिनों की इस नई जिन्दगी में वह जितनी वाचाल और अनुभवी हो आई है, यह सब तात्कालिक तो कदापि नही है। तात्कालिक, यानी उसके अन्दर की औरत जात का इस नई जिन्दगी में प्रवेश के बाद का अर्जित बोध। बल्कि, शायद औरत जात को जितने भी संस्कार—विवाहोत्तर ही नही, बल्कि संतान हो जाने के बाद के भी—हो सकते हैं, उन सबको उसने पिछले वर्षों में खुद ही अपने अन्दर उपजा कर, खुद ही दबा रखा था।

ठीक वैसे ही जैसे कोई कंजूस अपने उपार्जित धन को जमीन के अंदर गाड कर रखे, कि आड़े वक्त पर काम आएगा ।

तो क्या रामप्यारी कहीं अन्दर-ही-अन्दर यह सम्भावना लिए हुए पिछले वर्षो को व्यतीत करती रही थी, कि एक-न-एक दिन उसे कोई पुरुष मिलेगा ? शायद, रामप्यारी आज से पहले की अपनी तमाम दमित वासना और वाचालता का ही उत्खनन कर करके, उन्हे प्रयोग मे ला रही है ।

रामप्यारी ऐसा—यानी जपने भुक्तभोगी होने का पूर्वभ्यास—महसूस करती है, मगर इसे आत्म-स्वीकृति नही दे पा रही है । अपने वर्त्तमान—अपनी जिन्दगी से सम्बद्ध सारे प्रश्नो की तात्कालिकता—को अपने ही द्वारा उद्भूत और भोगे हुए अतीत के रूप में आत्म-स्वीकृति देने में रामप्यारी को अपनी मनस्थितियो की पुनरावृत्ति का बोध होता है ।......और रामप्यारी, अतीत छोड़, वर्त्तमान की पुनरा-वृतियों से भी वितृष्णा अनुभव करने लगती है । रामप्यारी ने यह बात बिंदो चौधरानी से कही नहीं है, मगर खुद जानती है, कि बिंदो चौधरानी से जो उसने आज उसकी पाली होने की बात कही थी, सो औरत जात के हक के बोध के कारण नही । बल्कि इसलिए कही थी, कि कही अन्दर-ही-अन्दर बह शारीरिक-सम्बन्धों की पुनरावृत्तियो की अपेक्षा इस कल्पना मे ज्यादा आसक्ति अनुभव करने लग गई है, कि अनुभूति के उन क्षणों का आना भी क्या वास्तव में संभव हो जाएगा, जिन पर पत्तो के होठों का आवरण—यानी रामप्यारी की जिज्ञासा का आवरण—ज्यादा देर तक नहीं ठहर पाया था ?

रामप्यारी ने शर्म के मारे फिर मुँह ढाँप लिथा । उसे पत्तो की याद हो आई थी । उसने रोटियाँ पका ली थी और अब सोच रही थी, कि एक रोटी चूरकर, पत्तो के लिए दूध-रोटी बना दे । सिर्फ आधा

किलो दूध आता है, उसमें पानी मिलाकर पत्तो को भी पिलाना पड़ता है और चाय भी बनानी पड़ती है।

बच्चो को खिला चुकने के बाद, रामप्यारी और बिंदो चौधरानी साथ-साथ खाने बैठीं, तो रामप्यारी ने लकड़ी पर फैली हुई रोटियो की गड्डी बना दी। लगातार उसे ऐसा लगता रहा, कि वह बिंदो चौधरानी से ज्यादा रोटियाँ खाती चली जा रही है। इसलिए जब बिंदो ने यों पूछ लिया, कि 'क्यों, इत्ते मे ही भर लिया तेरा पेट ?' तो रामप्यारी को लगा, कि परोक्ष रूप से यह प्रश्न भी इस आक्षेप की पुष्टि करता है कि जितना स्थूल उसका जिस्म है, उतनी ही ज्यादा उसकी खुराक भी तो होगी ही।

सिर्फ इतना ही नही। बिंदो चौधरानी यह भी तो सोच सकती है कि अपनी स्थूल देह की मासलता के अनुपात मे ही रामप्यारी की शारीरिक भूख भी तो होगी ?

न-जाने चरस के नशे मे धुत्त हरभजन चौधरी कैसी-कैसी बातें करे इसके प्रति एक अदम्य कौतूहल होने के बावजूद, रामप्यारी हरभजन चौधरी वाली झुग्गी की तरफ को नही निकली। तमाखू भरकर उसने चिलम भी बिंदो चौधरानी के ही हाथो भिजवा दी। मगर बिंदो चौधरानी खुद पीती हुई, उल्टे पाँवों लौट आई—"आज ना पियेंगे तेरे चौधरी अब हुक्का। आज तो गुलबिया मौसी की चिलम चढ़ी हुई है।"

रामप्यारी के पास बैठी-बैठी बिंदो चौधरानी हुक्का पीती रही और इस बीच रामप्यारी ने बड़े प्रेम से कई बार कोयले ठीक से लगा दिए, तो बिंदो चौधरानी कुछ प्रसन्न हो गई। रामप्यारी के कंधे पर हाथ मार कर बोली—"अब रामप्यारी, तूँ यो जान, के वो जो गुलबिया मौसी है ना ? चरस पिला-पिलाकर, मर्दों को ऐसा बनाके

वापस लौटाती है, जैसे कोई बघेरे को गोश्त सुँघाकर, डंगरो के बाडे मे छोड़ दे ।"

"पर चौधरी तो बिल्कुल चुपचाप लेटे मालूम पड़ते है, दीदी ? तुम तो कह रही थीं, कि इतना बड़बडाते है नशे में, कि आँख नही लगने देते ?"

"अरी, तूँ जान, के न जाने क्या-क्या अंट-शट किस्से सोचता हुआ खामोश पड़ा होगा मरद की जात !" बिंदो चौधरानी ने अपने मुँह का धुआँ रामप्यारी के कान में छोड दिया । फुसफुसाती ही बोली—"होर फिर रात-रात-भर सुनाता चला जावेगा नौटंकी का जैसा भॉड़ !"

रामप्यारी ने पुरुष को नशे में धुत्त होकर बड़-बड़ाते कभी नही सुना है । रामप्यारी ने पुरुष को किस्से गढ़-गढकर सुनाते कभी नही सुना है । रामप्यारी अपने इस निश्चय को भी आत्म-स्वीकृति नही दे पा रही है, कि इस बात की कल्पना वह कर चुकी है कि यदि बिंदो चौधरानी जाकर हरभजन के साथ सो गई, तो वह रात-भर जागती रहेगी और सुनेगी ।

रामप्यारी बच्चो को सुलाने मे लग गई और बिंदो चौधरानी से बोली—"पानी का लोटा लेती जाना ।"

बिंदो चौधरानी पानी का लोटा रखकर चली गई—"बोली तेरे को ही बुला रिया है !"

रामप्यारी को इतनी रात गए बिंदो चौधरानी का यों फुसफुसाना ठीक वैसा ही लगा, जैसा कही अपने नजदीक से नागिन का सरकना लग सकता है । हो सकता है, नागिन के सरकने में ऐसी फुसफुसाहट की आवाज न होती हो, मगर बिंदो चौधरानी के यों फुसफुसाने में रामप्यारी को ऐसी आवाज़ लगती है ।

रामप्यारी सहसा कोई निर्णय नहीं ले पाई । कुछ नहीं कह पाई ।

उसके मस्तिस्क मे एक ही प्रश्न कौंधता रहा—तो क्या जो-कुछ हरभजन चौधरी उससे कहेगा और उत्तर मे जो-कुछ वह खुद फुसफुसाती रहेगी, उस सबको बिंदो चौधरानी खुद रात-भर जागती सुनती रहेगी ? तो क्या बिंदो चौधरानी भी रात-भर अपनी बगल में किसी नागिन का सरकते रहना महसूस करेगी ? यानी रामप्यारी जैसा खुद महसूस करती रहना चाहती थी, वैसा अब बिंदो चौधरानी महसूस करती रहेगी ?

हरभजन चौधरी वाली झुग्गी में प्रवेश करते समय, आज रामप्यारी ने ऐसा महसूस नहीं किया, कि उसके पाँवों में अब बिल्ली की सी सतर्कता शेष रह गई है। उसे लगता रहा, पिछले वर्षों में आत्म-गोपन और आत्म-रति के स्तर पर उसने अपने नारीत्व की जितनी स्वय-उद्भूत और स्वय उत्खनित कल्पनाओं और अनुभूतियो को अपने अदर समेट रखा था, वो अब बिल्ली के नाखूनों की अपेक्षा कँटीले के पत्तों की तरह बाहर को फूटते ही जा रहे है। और कँटीले के मिट्टी से बाहर फूट आए पत्तो को फिर ज्यों-का-त्यो ही मिट्टी के अंदर ही नही दबाया जा सकता। कँटीले के बाहर फूट आए पत्तो को मिट्टी में दबा देने पर, कँटीले के पत्तों की धार टूट जाती है।

अपने नारीत्व के बाहर फूट आने पर, शायद, कोई भी औरत ऐसा पसंद नही कर सकती, कि वह अपनी सारी प्रतिक्रियाओं को कँटीले के पत्तों की तरह दूसरों के अस्तित्व को चुभकर, उन्हें चौंकाते हुए नहीं, बल्कि फिर से अपने ही अंदर दफन होता हुआ देखे।

रामप्यारी को देखते ही, हरभजन चोधरी ने हाथों की पुरानी किताब एक तरफ रख दी। मिट्टी के तेल की छोटी-सीं ढिबरी उसनें ठीक अपने सिरहाने के पास, टीन के संदूक के ऊपर रख रखी थी।

रामप्यारी का हाथ पकड़कर, नीचे बिठाते हुए, हरभजन चौधरी बोला—"कही तबियत बेचैन तो ना हुई दिन मे अकेले-अकेले ?"

रामप्यारी ने उत्तर देना चाहा कि 'नही, बच्चो के साथ बड़ा जी लगा रहा। अकेलापन जरा-सा भी महसूस नही हुआ।' मगर फिर यह सोचकर, चुप ही रह गई, कि शायद, हरभजन चौधरी का प्रश्न उसके बिना अकेले-अकेले रहने का है ! सोच चुकते ही, रामप्यारी हँस पड़ने को हुई। शायद, मास्टर सतपाल सिंह के साथ ऐसा—अकेलेपन का बोध—हो सकता था, मगर हरभजन चौधरी के साथ नही हो सकता। जो पुरुष अपने मन की गहराइयो से बाहर निकल कर, अरहर के खेतों के समानातर दूर निकल जाता है, फिर कभी नही लौटता और अकेलेपन की अनुभूति सिर्फ़ ऐसे ही पुरुष को लेकर हो सकती है। जो पुरुष पहले पीठ पर हथेली की थाप मारता है—जैसे कोई मुसाफिर किसी सराय के बंद दरवाजे को थपथपाए—फिर अंदर प्रवेश करता है, उसके आने—यानी अपने अस्तित्व से जुड़ने—मे कोई आकस्मिकता नही होती है। ऐसे पुरुष की अनुपस्थिति मे भी किसी प्रकार के अकेलेपन की अनुभूति का कोई प्रश्न किसी औरत—कम-से-कम रामप्यारी—के सामने नही आ सकता।

मगर रामप्यारी लगभग नाटकीयता के साथ बोल पड़ी—"बेचैन ना होती, तो क्या खुश रहती ? सबेरे के गए, साँझ को लौटे थे।...... और साँझ को भी सीधे गुलबिया मौसी के यहाँ......"

"मगर, चौधरानी ! गुलबिया मौसी के यहाँ का लौटा हुआ मरद औरत के दिल को राजा इंदर की तरह खुश कर देता है। लालपरी मैनका ने जो मोहनी मंतर राजा इंदर को देके रखा था, कि बज्जर से अपने राजपाट और मंतर से परियों की महफिल का मजा लूटना, वो क्या झूठा था ? सुन, गुलबिया मौसी कहती है, कि 'हरभजन, तू सात-सात जनानियाँ रखेगा, तो भी नहीं टूटने का !' गुलबिया मौसी क्या झूठ कहती है, रे ? मगर गुलबिया मौसी यों भी कहती है, कि बाँझ औरत की संगत ठीक नहीं होती है।"

रामप्यारी को लगा, कि उसकी सारी देह के रोम-रोम को—बाहर फूटे हुए तमाम कँटीले के पत्तों को—तेजी से अंदर की तरफ मोड़ दिया गया है। रामप्यारी आक्रोश के कारण एकदम झनझना-सा उठी—"और बाँझ मरद की ?"

आवेश मे ही रामप्यारी यह भी कहने को हो गई थी, कि—'मास्टर सतपाल सिह की ?'

प्रश्न पूछते-पूछते ही रामप्यारी एक तरफ को जा बैठी। उसे लगा कि हरभजन चौधरी ने उसके इस प्रश्न को ठीक उसी अर्थ मे लिया होगा, जिस तरह उसने रामप्यारी पर आक्षेप किया था।

"होर तू यों जान, के उमर ढलने को आ गई गुलबिया मौसी की, मगर बच्चों के नाम का सिल-बट्टा भी ना निकला !"—कहते-कहते, हरभजन चौधरी हँस पड़ा।

तो क्या उसने रामप्यारी का उद्धत प्रश्न नही सुना ? याकि रामप्यारी ने वह प्रश्न सिर्फ़ अपने अदर-ही-अंदर किया था ? तो क्या हरभजन चौधरी ने अपने ऊपर खुद ही आक्षेप किया था ?

बिदो चौधरानी वाली झुग्गी में ढिबरी बुझाई जा चुकी है और अँधेरे मे से उजाले मे घिरी हुई हर चीज साफ-साफ दिखाई देती है। बिंदो चौधरानी की झुग्गी में से कोई आवाज नही आ रही है। और रामप्यारी जानती है, कि बिदो चौधरानी को हर बात और ज्यादा साफ-साफ सुनाई दे सकती है। रामप्यारी यह भी महसूस करती है, कि अगर वास्तव मे बिंदो चौधरानी नीद मारेगी, तो ऐसा सिर्फ रामप्यारी की बातों को सुनने के लिए करेगी। उसके लिए आकर्षण हरभजन चौधरी की पुनरावृत्तियो का नही, सिर्फ रामप्यारी की प्रतिक्रियाओ का ही हो सकता है।

रामप्यारी पीठ लौटाकर सो जाती है।

पीठपर नागफनी का पत्ता छितराकर रह जाता है, रामप्यारी कर-

वट नही बदलती है। सिर्फ़ अनुभव करती है, कि पीठ पर आर-पार तक सनसनाता हुआ रक्त तेजी से एक दायरे में सिमट आया होगा—नागफनी के पत्ते के बराबर दायरे में। रामप्यारी उस दायरे मे अपने खून को नाली मे रुके हुए पानी की तरह सनसनाता महसूस करती है। रामप्यारी के मन मे कौतूहल जागता है, कि करवट बदल कर, हरभजन चौधरी की हथेली को उजाले मे देखे—उसमें भी कही खून किसी दायरे मे सिमट आया है, या नही ?

रामप्यारी अपने ही अदर की वासना से आक्रात होती है। रामप्यारी अपने मास को कँटीले के पत्तो की तरह बाहर को फूटता हुआ महसूस करती है। रामप्यारी सोचने लगती है, कि बघेरे का पंजा जहाँ पर पडे, वहाँ पर का मांस ऊपर को उछल आता होगा ?

रामप्यारी को लगता है, पिछले दस-बारह वर्षो तक वह लगातार दो हिस्सो मे बँटती रही थी। देह से नही, मन से। अपने अंदर की तमाम वासना और उत्तेजनाओ को वह अपने अवचेतन की ओर ठीक वैसे ही धकेलती रही थी, जैसे कोई सँकरी सुरग में किसी हथिनी को प्रविष्ट कराने की कोशिश करे।

हरभजन चौधरी ढिबरी बुझा देता है—"चौधरानी, तेरे को आज मैं गुलबकावली का किस्सा सुनाता हूँ। सुन रही है के ?"

चरस के नशे मे उसकी आवाज लड़खड़ाती है—"गुल बकावली के किस्से की शरूवात तूँ यो जान कि जो भी शख्श गुलबकावली के फूल को लेने जाता है—गुलबिया मौसी यों कहती है, के 'हरभजन, गुलबकावली का फूल कही समुन्दर-पार परियो के जंगल मे नही होता, मर्द के सीने के अदर ही होता है।' तैंने गुलबिया मौसी की आँखे नही देख रक्खी है ना ? अब बिगैर देखे ही यो समझ ले, के सबेरे ऐसी दिखाई देवें सुसरी जैसे बुझे हुए कोयले हो—मगर रात को यों, जनी चरस की लपटें ऊपर उठी हुई हों ! गुलबिया मौसी यों कहती है कि

चूंके मर्द अपने हाथ अपने ही सीने के अंदर नही ले जा सकता है, इसी लिए वह अपने अंदर के गुलबकावली के फूल को औरत की छाती के अंदर रख देता है ।......"

रामप्यारी हौले-से खर्राटा भरती है । रामप्यारी यह पूछना भी चाहती है कि गुलबिया मौसी यों नहीं कहती, कि नागफनी के पत्ते भी सिर्फ किसी जंगल में ही नही होते, बल्कि मर्दों के अंदर ही होते हैं ? कँटीले के पौधे भी कहीं बाहर ही नही होते हैं, बल्कि रामप्यारी जैसी औरतों के अंदर ही होते है ?...कि औरत—वह सिर्फ रामप्यारी-जैसी ही क्यों न हो—अपने नाखूनों को बाहर फैलाने में नही, बल्कि सिर्फ उनको वापस समेट सकने में बिल्ली की तुलना में असमर्थ होती है ?

मगर प्रश्नात्मकता के साथ, रामप्यारी सोचती भी रह जाती है, कि क्या किसीं सँकरी सुरंग के द्वारा किसी भीमकाय हथिनी को किसी गुफा के अन्दर प्रविष्ट करा सकना संभव भी है ? वास्तव में रामप्यारी का सोचना, अक्सर अपने ही द्वारा प्रश्नाहत हो जाने में बदल जाता है । जब भी ऐसा होता है, रामप्यारी उत्तर भी पाना चाहती है । मगर ऐसी स्थिति मे उत्तर चाहने की आकांक्षा तो ज्यो-की-त्यों बनी रहती है, तब एक साथ कई ओर से—यानी कई-एक के प्रति एक साथ —प्रश्नाहत होना पड़ता है, लेकिन प्रश्न पूछ सकना सभव नही रह जाता है । कँटीले के पत्तो की तरह प्रश्न देह के उछले हुए हिस्से में पनप कर, फिर वही दफ़न हो जाते है ।

रामप्यारी कोई प्रश्न गुलबिया मौसी से, कोई हरभजन चौधरी से, कोई बिंदो चौधरानी से पूछना चाहती है—या कि इनकी ओर से अपने को प्रश्नाहत होता महसूस करती है—मगर रामप्यारी इन सबके प्रति अपनी प्रश्नाकुलता को फिर खुद ही मास्टर सतपाल सिंह और अपने साथ जोड़कर, उत्तर मे बदल देना चाहती है ।

रामप्यारी पूरी उत्कटता के साथ चाहती है, मगर ऐसा होता नही

हैं। एक ही क्षण मे अनेक प्रश्नों से आहत रामप्यारी प्रश्नो को महसूस-भर कर पाती है, पूछ नही पाती।

रामप्यारी कोई उत्तर नही खोज पाती है और हरभजन चौधरी अँधेरे में ही फिर नागफनी के पत्तो की तरह फैलता है और एक के बाद एक प्रश्न यो पूछता है, जैसे ढिबरी को बार-बार जला कर, बार-बार बुझाता जा रहा हो।...और जलाते वक्त, उजाले मे रामप्यारी को सँकरी सुरंग के मुहाने के अन्दर की तरफ को ठेली जा रही हथिनी की सी अजीब स्थिति में देख लेने के बाद, बुझाते समय, गुलबकावली के किस्से को आगे बढा रहा हो—"तो तू यों जान, छोटी चौधरानी! के मैंने भी सुसरे अपने सीने के अन्दर के गुलबकावली के फूल को भतेरी जनानियों की छाती के अन्दर लगाकर देखा।. मगर, बुरा मती माने, दोनो हाथों से टटोलता फिरा, तो गुलबकावली का फूल कही ना मिला। सुसरा भतेरे दिनो तक जिनको गुलबकावली के फूल समझता, होर अपने को धोखा देता फिरा..."

अँधेरे में ही नागफनी के पत्ते फिर वृत्ताकार घूम जाते है और खून की नसें टूटने-टूटने को हो आती है, मगर रामप्यारी फिर भी हरभजन चौधरी की तरफ को करवट नहीं बदल पाती है। अपनी समग्र शारीरिक उत्तेजना के बावजूद, रामप्यारी कही ऐसे अनिर्णीत मानसिक-तनाव की स्थिति में पाती है अपने को, जिसमे अपनी ही प्रश्नाहत आत्म-स्वीकृति प्रस्तुत क्षणो को किसी अजीब से अन्तर्द्वन्द्व के सँकरेपन में ठहरा देती है। रामप्यारी सोचती है, कि पिछले वर्षों में अपनी जिन तमाम तृष्णाओं और वासनाओ को निरंतर आत्म-गोपन और आत्म-निषेध के स्तर पर कही अपनी ही अंतर्गुहा में दफन करती चली आई थी, वो सारी जुड़-जुड़ कर, उसी अंतर्गुहा—अनिर्णीत और प्रश्नाहत मानसिकता की अंतर्गुहा—में भीमकाय हथिनी की तरह खड़ी हो गई थीं!...और पिछले कुछ दिनों से वासना और उत्कंठाओं से आंक्रांत

हो-होकर, वह हथिनी—वह अनिर्णीत और प्रश्नाहत मानसिकता—बाहर फूट आना चाहती है, न आ सकने पर, वापस लौट जाना चाहती है—मगर ऐसा हो नही पाता है। पहली स्थिति में ऐसा लगता है, कि अपने ही अन्दर जन्मी हुई अनिर्णीत और अनभिव्यक्त मानसिकता वही पनपकर, बहुत पुख्ता और विकराल हो चुकी है, लेकिन आत्म-रति की सँकरी सुरंग ज्यों-की-त्यो रह गई है—जितनी विकराल अतृप्त और प्रश्नाहत मानसिकता है, उतने बड़े आत्म-भोग को स्वीकार नही पाती है।...और दूसरी स्थिति मे—ऐसी आत्म-स्वीकृति की स्थिति में—अपने से बाहर फूट आए अपने ही अस्तित्व को फिर से अपने ही अन्दर लौटा लेने में भी असमर्थता ही अनुभव होती है।

हरभजन चौधरी किस्सा बदल चुका है। ढिबरी बुझाने से पहले पढी हुई पुस्तक में से हरभजन चोधरी पहले तस्वीरे दिखाना चाहता है। ढिबरी जलाकर, रामप्यारी को अपनी तरफ घुमा लेता है, मगर रामप्यारी जागती नहीं है। रामप्यारी धीमे-धीमे खर्राटे भरती ही रहती है। रामप्यारी बिंदो चौधरानी को महसूस कराना चाहती है, कि उसे तो नीद आई हुई है। रामप्यारी चाहती है, कि बिंदो चौधरानी भी सो जाए।

हरभजन चौधरी महसूस करता है, कि, दिन-भर की थकान के बाद, इतनी चरस चढ़ जाने से ढिबरी के उजाले को ज्यादा देर तक बर्दाश्त कर सकने में वह खुद भी असमर्थ होता जा रहा है।

खीझकर, हरभजन चौधरी ढिबरी बुझा देता है।

रामप्यारी को लगता है, कि वह ठीक वैसा ही महसूस कर रही है, जैसा कोई हथिनी तब महसूस कर सकती है, जब अँधेरे मे हाथी के सूँड की जगह वह बघेरे के पंजे को अपनी पीठ पर महसूस करे। रामप्यारी धीमे से आवाज दे बैठती है।

हरभजन चौधरी नींद को पलकों पर से ऐसे उछालने की कोशिश

करता है, जैसे अक्सर चाँदी के रुपये को अँगूठे से उछाला करता है। जैसे बड़ी देर तक धीमे-धीमे सुलगाने के बाद ही चरस की कली उठती है, खुद रामप्यारी अपनी सारी देह में से, अपनी दमित मानसिकता मे से उस आवाज को तेजी से बाहर फूटती हुई-सी महसूस करती है, जिसे होंठो से अन्दर धकेलती रही थी। उसे लगता है, कि अंतर्गुहा मे पुजीभूत अनिर्णीत और आक्रात मानसिकता अब एक साथ फूट पडने को है।

हरभजन चौधरी कहता है—"अरी, छोटी चौधरानी इतना कौचने पर तो हथिनी भी उठ के खड़ी हो जावेगी के? कितने बरसो से ना सोई थी भला? अरे, त्तेरी! अब मेरे को याद आ रहा है। जो शास्तर की किताब मै बाँच रहा था, उसमे जनानियो की चार जातों मे से एक जात हस्तनी नारी की बताई गई है! होर, बुरा जनी माने, उसके लच्छन यो बताए गए है, के जिसम से मोटी-लम्बी होर बद्दू होती है."

रामप्यारी की चरस की कली की तरह उठती हुई मानसिकता और शारीरिकता अपनी ही जगह पर टूट जाती है।

हरभजन चौधरी नीद मे डूबती हुई आवाज मे फुसफुसाता रहता है—"होर हस्तनी नारी के जिसम का हर हिस्सा बड़ा होता है—"

रामप्यारी खर्राटे भरने के प्रयास को बनाये रखने में असमर्थ हो जाती है। रामप्यारी अपने को ऐसे झटकती है, जैसे हवा के वृत्ताकार दायरों को उछालते हुए नागफनी के पत्तो को दूर फेंक रही हो। उसे अपनी स्थिति ऐसी लगती है, जैसे कीचड के तालाब से बाहर निकल-कर सँकरे सुरग के मुहाने पर खड़ी हथिनी के चारो ओर बघेरो का झुण्ड खड़ा हो गया हो।

मास्टर सतपाल सिह से लेकर, हरिहर सिह अहीर, छिद्दालाल हलवाई, डॉक्टर शर्मा, मातादीन सिंह, उमर हुसैन टाँगेवाला, स्कूटर

वाले सरगार जी, खोमचेवाला, तीरथराम बढई और हरभजन चौधरी—हरेक व्यक्ति रामप्यारी को याद आता है। रामप्यारी अँधेरे में हरेक व्यक्ति को महसूस करती है।

हरभजन चौधरी कहता है—"होर हस्तिनी नारी को नींद बहुत ज्यादा आती है......"

तो क्या हरभजन चौधरी रामप्यारी को वास्तव मे सोई हुई समझता रहा है? तो क्या हरभजन चौधरी रामप्यारी की सारी आक्रांत मानसिकता और शारीरिकता को नही देखता रहा है? तो क्या अँधेरे मे बघेरे की आँखे सिर्फ चमकती-भर है, मगर देख नही पाती? रामप्यारी निरतर प्रश्नाहत ही रहती है।

हरभजन चौधरी कहता है—"होर, छोटी चौधरानी!... शास्त्रों मे यों भी लिक्खा हुआ है, के हस्तनी जात की जैसी जनानी का जोडा मेरे-जैसे मरद के साथ ही ठीक बैठ सकता है।"

रामप्यारी फिर प्रश्नाहत होती है, तो क्या मास्टर सतपाल सिह से उसका जोड़ा इसीलिए नही बन पाया था?

हरभजन चौधरी ऐसे करवट बदलता है, जैसे तेज आँधी मे नागफनी का पौधा उखड़ गया हो। फुसफुसाता है—"तेरे को अब नीद ही इतनी जोर की आ रही है सुसरी, तो जा, रामप्यारी!......होर, क्या बोलूँ अब। सुसरी पदमनी जात की जनानी तो हमारे-जैसे लक्कड-फक्कड़ कबीलो मे पैदा नही होती. . लेकिन गुलबिया मौसी कहती थी, कि तूँ अगर मेरे से निभ गई, तो सारे घर को खुशहाल कर देगी। जैसे तैने आज बालक सँभाल के रक्खे थे, मेरे को भी लगता है, तूँ मेरे घर को सरग बना देगी। अभी तैने मँझली का कुतियों की तरह का भूँकना नही सुना है......"

तो क्या हरभजन चौधरी चरस के नशे मे नही है? याकि चरस का नशा इतना गहरा हो चुका है, कि उसकी अंतर्गुहा से ये आवाजें

बाहर चली आ रही है ? ठीक वैसे ही, जैसे मौसम का नशा बहुत गहरा हो जाने पर गुलाब के कँटीले पौधो में लाल-लाल फूल फूट आते है । जैसे चरस चढ जाने पर गुलबिया मौसी की बुझी हुई आँखें लाल-लाल अंगारो की तरह दहक उठती होंगी ।

एक ही पुरुष पहले क्षण मे गुलबकावली का किस्सा शुरू करता है और नारी-भेदों की व्याख्या करने लगता है—और दूसरे ही क्षण अपने बच्चो की ममता और अपनी घरवाली के प्रति आक्रोश की सीमा पर आकर, एकदम खामोश हो जाता है । जिदगी की काल्पनिकता और यथार्थता के बीच एक ऐसे पुल की तरह नीद में डुब जाता है, जो अपने नीचे बहती हुई किसी नदी के ऊपर हिलता हुआ-सा दिखाई देता है ।

रामप्यारी को ऐसा महसूस होता है, कि आज नदी की भूमिका उसके लिए ही शेष रही हुई है । रामप्यारी अपने सारे शरीर में रक्त को सनसनाता-सा अनुभव करती है । उसे लगता है, उसकी देह पर भी ठौर-ठौर गुलाब के लाल-लाल फूलों-जैसी कोई चीज फूटने को है । रामप्यारी सोचने लगती है, तो क्या फूलने से पहले पौधे भी ठीक ऐसा ही शारीरिक-तनाव अनुभव करते होगे ?

एक सँकरी सुरग के अन्दर की गुफा मे कैद हथिनी-जैसी मानसिकता के—अपने दमित, अतृप्त और आक्रांत अतीत के—यो अपने अस्तित्व में से गुलाब के लाल-लाल फूलो की तरह फूट आने को हो आने की स्थिति रामप्यारी को बिल्कुल अजनबी लगती है ।...और बाहर से किसी स्थिति के अजनबी हो आने का अर्थ सिर्फ यही होता है, कि कही उसमे अपनी सारी आंतरिकता का प्रतिबिम्ब उभरता जा रहा है ।

पुरुषो को लेकर अपनी अनुपलब्धियों और वितृष्णाओ के कारण जो सारी वासनायें और वर्जनायें रामप्यारी अपने ही अन्दर दफन करती चली आ रही थी, उनको यों एकाएक अपनी पूरी ऊष्मा और

उत्तेजना के साथ व्यक्त कर सकने की सामर्थ्य का अहसास हो आना—शायद, यही अपनी प्रतीक्षित जिंदगी को अपने समानांतर प्रत्यक्ष देख सकने की स्थिति हो सकती है।

अनुपलब्धि और आत्म-निषेध के स्तर पर दमित अपने नारीत्व को यों आत्म-स्वीकृति देने की स्थिति आ जाने पर, शायद, प्रत्येक औरत ऐसा ही अनुभव करती होगी।...तो क्या रामप्यारी अपनी मानसिकता में औसत औरतों से अलग सिर्फ अपने ही आत्म-निषेध को लेकर थी, आत्म-रति या कि आत्म-भोग को लेकर नही ?

शर्म के मारे अँधेरे मे रामप्यारी का चेहरा एकदम लाल-लाल हो आता है।

हस्तिनी नारी को गहरी नीद आने का शास्त्र-सम्मत लक्षण झूठा पड़ता जा रहा है। हरभजन चौधरी और बिंदो चौधरानी के गहरी नींद में डूबे होने की अनुभूति से, रामप्यारी अपनी आँखों को और भी टटका-टटका पाती है और अँधेरे को टटोलते-टटोलते ही महसूस करती है, कि हरभजन चौधरी अब किसी और प्रतीक्षा में नहीं है।

रामप्यारी को लगता है, कि प्रतीक्षा अब सिर्फ उसके लिए शेष है। जिंदगी को उसकी मानसिकता और शारीरिकता दोनों में भोग चुके पुरुष की सगति में मानसिकता और शारीरिकता दोनों को लेकर आत्म-रति से आक्रांत रहती चली आई किसी औरत के लिए प्रतीक्षा ही शेष हो सकती है।

अँधेरे मे भी नदी बहती रहती है और सेतु को सबोधित—या कि उसे अपनी उपस्थिति की अर्थवत्ता के बोध से उत्तेजित—कर सकती है।

रामप्यारी अपने को हरभजन चौधरी की पीठ से टिका हुआ महसूस करती है। पुरुष जब आसक्ति के चरम पर पहुँची हुई नारी को

यों अनासक्ति के साथ स्वीकारने लगता है, तो शायद, हर औरत ऐसा ही महसूस करती है।

रामप्यारी कल्पना करती है, कि शायद, कल से अपने अंदर और बाहर के सारे यथार्थ परिवेश में उसकी स्थिति यही होगी। जिस जिंदगी—अपनी जिस अनिर्णीत और प्रश्नाहत मानसिकता तथा शारीरिकता—की तरफ वह बार-बार पीठ फेर लेती थी, उसके प्रति कल से वह अपने को खुद ही समर्पित पाएगी।

हो सकता है, भविष्य में भी वह हरभजन चौधरी को बघेरे की तरह चिलमिलाता और पंजे मारता हुआ महसूस करे—हो सकता है, रोज सबेरे उठने पर उसे बिंदो चौधरानी वास्तव में कटखनी कुतिया की तरह भूंकती मिले—हो सकता है, बिंदो चौधरानी को अपनी सौत की बराबरी पर न रखकर, भविष्य में भी वह मिसेज कपूर से ही अपनी तुलना करती रहे—

ऐसा सब-कुछ हो सकता है।...मगर, इसके बावजूद, शायद, कल सवेरे-सवेरे तक रामप्यारी की सारी अनिर्णीत मानसिकता बाहर निकल आएगी।

शायद, कल सवेरे तक रामप्यारी हरभजन चौधरी के मुकाबले पर अपने अदर खड़े मास्टर सतपालसिंह को नागफनी के फूल की तरह हरभजन चौधरी के ही अंदर उगा लेने मे समर्थ हो जाए!

और, शायद, वर्षो की आत्म-निषेध की व्याधियों से आक्रांत रामप्यारी एकदम संयत और शांत मन से अपने वर्त्तमान भी तात्कालिकता में जीने लगे।

हो सकता है, रामप्यारी के लिए फिर ऐसा कोई अजनबी नहीं रह जाए, जिसे वर्षों तक हथिनी की सी छोटी-छोटी आँखें ढूंढती ही फिरें और बार-बार मुर्गी के काने अंडों की तरह लुढ़कती रहें।

हो सकता है, कल सवेरे तक रामप्यारी के लिए पुरुषों को लेकर कोई जिज्ञासा शेष न रह जाए।

●